

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180480

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 83**
M 67 D

Accession No. **H 2594**

Author **मिश्र दयाशंकर**

Title **दीपदान**

This book should be returned on or before the date
last marked below.

दीपदान

(मौलिक उपन्यास)

लेखक—

दयाशंकर मिश्र

प्रमुख वितरक—

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा, दिल्ली

प्रकाशक—

स्वाति-प्रकाशन

६१/३१ रामजस रोड

करौल बाग ,

नई दिल्ली ।

* * *

सर्वाधिकार सुरक्षित

* * *

मूल्य चार रुपये

* * *

मुद्रक—

Checked 1965

सम्राट् प्रेस

पहाड़ी धीरज

दिल्ली ।

Checked 1969 लेखक के अन्य उपन्यास—

मरीचिका

समिधा

पाथेय

बुझते दीप

कोठी की बात

रजनी गन्धा

छोटी चाची

छोटी बहू

भीनी

सीप का मोती

अपनी सहोदरा—

सौ० कुन्तल पांडेय, वासन्ती शर्मा

और

प्रिय सुरेन्द्र प्रभाकर को—

और वे—

जो इस कहानी के चिर-उज्ज्वल आधार हैं—

उन सबको—

—लेखक

This life is but the passage of a day,
This life is but a pang and all is over,
But in the life to come which fades not away,
Every love shall abide and every lover.

—*Rossetti*

जीवन—

मृत्यु की पृष्ठभूमि में एक मोहक चित्र है—

जिसे—

हम अपनी अन्तिम साँस तक अच्छे-बुरे रंगों से रँगते रहते हैं !

और हमारे बाद—

आने वाली पीढ़ी हमारे अच्छे रंगों को देखकर मुस्करा उठती है !

और—

बुरे रंगों को पोंछना होता है भीगी पलकों से—

क्षुब्ध निश्वासों से !

—लेखक

अपनी बात !

आज के इस युग में हम सब एकान्त सुख चाहते हैं, यदि सम्भव हो तो दूसरों का सुख छीनकर भी—

अकेले ही सुख भोगने की यह अदम्य लालसा हमारे राष्ट्रीय जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो चुकी है। हम समर्पण का गौरव समझ ही नहीं पाते ! किन्तु जब अपने राष्ट्र की प्रगति को आँकने बैठते हैं, तो समझते हैं कि प्रगति की दौड़ में हमने सारे संसार को पछाड़ दिया है। पर अपने इस चोर मन की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

क्या कभी हमने सोचा कि—इंगलैंड, जापान की देश-भक्ति, समस्त रूस में व्याप्त शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान की भावना, चीन की सादगी और ईमानदारी जैसे गुणों का अपने राष्ट्रीय जीवन में हम कितना-क्या विकास कर पाये हैं ?

लगता है शरीर पर उठते फोड़े की सूजन को ही अपना स्वस्थ मुटापा मानकर हम संतोष की साँस ले लेते हैं लेकिन भाई ! इस झूठे सन्तोष से कब तक काम चलेगा ?

आज जब देश पर बलि-बलि जाने वाले देश-दीवानों को चुनाव के टिकट, 'कार कोठी' की दौड़ में एकान्त सुख-भोग की मृग-मरीचिका में प्यासे हिरन की भाँति दौड़ते देखते हैं, तो मन दुख और क्लेश से भर उठता है।

सोचता हूँ—विश्व इतिहास में इतने बड़े ढोंग के दर्शन कभी, किसी युग में, कहीं भी नहीं हुये होंगे—

जहाँ, लाखों नंगे भूखे 'बेकार' नर-नारी सड़क की पटरियों, गन्दी बस्तियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह अपना जीवन बिता रहे हैं, उनकी

चिन्ता किये बिना, उन्हीं के आसुओं—अस्थियों के ईंट-गारे से बड़े-बड़े रंगीले होटलों और रंगशालाओं का निर्माण किया जा रहा है, जहाँ किसी एक विदेशी राजनीतिज्ञ के सम्मान में तिरासी हजार की सम्पत्ति, गाढ़े पसीने की कमाई चाय के गर्म पानी में डुबो दी जाती है !

यह सब किया जाता है इसलिए कि हम अपनी गरीबी एवं दैन्यता को छिपाकर झूठी शान-शौकत का राँव समस्त संसार पर जमा सकें कि देखो रे देखो ! इतने कम समय में हमने कितनी-क्या प्रगति कर दिखाई है !!

आज कोई राज्यपाल भारतीय संस्कृति का ढिंढोरा पीटकर अपने ही द्वारा लिखित पुस्तकों की बिक्री बढ़ाने की फिक्क में है, कोई मंत्री अपने को किसान मजदूरों का हिमायती प्रसिद्ध करके विशेष पान तमाखू की तलब मिटाने के लिए सैंकड़ों का पेट्रोल फूँक देता है। किसी अपरिग्रही मंत्री की कोठी सजाने के लिए विदेशों से फर्नीचर मँगाया जाता है। कोई अनासक्त महानुभाव अपनी ही जेब से रुपया देकर, जनता की ओर से अभिनन्दन ग्रन्थ छपाते हैं, और नागरिकों की करतल-ध्वनि के बीच किसी बड़े के करकमलों द्वारा सिर झुकाकर अपना ही ग्रन्थ ग्रहण कर लेते हैं।

तब उन्हीं के मुँह से समाजवादी ढाँचे की बात सुनकर लगता है जैसे उनके होठों से मुखरित हो रही है जन-जन को रस विभोर कर डालने वाली कोई मधुर रागिनी ! और अन्दर ही अन्दर अपनी हर साँस के साथ वे गुनगुना रहे हैं—

“लूटि सकै सो लूटि लै, उठी जाति है पेंठ !”

राजनैतिक और सामाजिक अंधेरगर्दी के साथ माँ भारती के मंदिर की व्यवस्था भी अब बदल गई है। आजकल वहाँ सरकारी पहरा है। सरकारी टिकट या मामा-ताऊ, भाई-भतीजे की पहिचान बिना कैसे भी प्रवेश नहीं मिलता।

मन्दिर के आँगन में तथाकथित आलोचक देवताओं, साहित्य के जागीरदारों और कहानी, उपन्यास-सम्राटों की ऐसी भीड़ है कि कहीं पर रखने की जगह नहीं—

मन्दिर के बाहर सरकारी इनाम-इकरार के भूखे साहित्यिक भिक्षुओं की धक्कम-धक्की, पार्टीबन्दी—नेतागिरी के अखाड़ेबाज खिलाड़ियों की भीड़-भाड़ देखकर एक ही बात रह-रहकर मन में उठती है—क्या किसी युग में, किसी देश में कभी ऐसी अनहोनी घटी होगी ?

उस दिन मन्दिर में प्रवेश पाने वाली एक हिंदी-साहित्य-समिति के सदस्यों की नामावलि पढ़कर तो प्राण कण्ठ ही में अटक गये । प्रायः सभी नामों के पीछे 'कपड़े वाले' 'कोयले वाले' 'सर्राफ' परचून वाले और ऐसी ही न जाने क्या-क्या उपाधियाँ जुड़ी हुई थीं । घंटों माथा-पच्ची करने के बाद समझ पाया कि—

आज माँ भारती के मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए केवल सरकारी टिकट ही नहीं, 'कपड़े वाले' 'कोयले वाले' जैसी सम्मान सूचक उपाधियाँ भी अनिवार्य हैं ।

मन्दिर-प्रवेश की आशा छोड़कर कभी किसी साहित्य-गोष्ठी, कवि सम्मेलन में जाने का मन करता है, तब भी यही निर्मम सत्य सदा सामने आता है कि वहाँ जाने के लिए किसी न किसी पार्टी में शामिल होकर, किसी अखाड़ेबाज भद्रजन के चरणों पर माथा टेकना होता है किन्तु ऐसी विनम्रता और पात्रता मेरे खून में कभी नहीं रही—

स्यात् मेरा यही आन्तरिक क्लेश आज 'दीपदान' में मूर्तिमन्त हो उठा है और यही है मेरे मन की वह भाव-भूमि जिस पर प्रस्तुत उपन्यास के कथा-सूत्र बिखरे पड़े हैं ।

अपनी कृति के सम्बन्ध में यह मेरी अपनी बात है, शेष तो पाठक का अधिकार है ।

बाल-विहार, रामजस रोड }
करोलबाग, नई दिल्ली }

—लेखक

सुनिये !

इस मन्दिर का द्वार खोलने से पूर्व, आप अपने समस्त मताग्रहों को थोड़ी देर के लिए भूल जाइये—नहीं तो—

—जिनके दर्द का यह 'दीपदान' जल रहा है, वह आपकी दृष्टि से ओझल ही रह जायगा !

—लेखक

साँझ के मटमैले बादल आकाश में अलग-अलग भटक रहे थे । सुधीर चुपचाप अकेला बैठा खुली खिड़की से उन्हीं को देख रहा था । देखते-देखते सोचने लगा कि जो बीत चुका है, जिसे उसने अपने से अलग उतार फेंका है, सो वही आज क्यों उसके चारों ओर छाता जा रहा है? उस बात को आज एक वर्ष बीत गया है !

अपमान का वह विषदंश ! किसी का निर्लज्ज अट्टहास ! रह-रह कर उसे याद आने लगा । सहसा कांपकर दोनों हाथों से अपनी जलती आँखें बन्द कर लीं । धीरे-धीरे एक विषादमयी मुस्कान उसके सूखे ओठों पर बिखर गई ।

एक वर्ष के अन्तराल को चीर कर उसने देखा—

यही वर्षा के दिन थे । ऐसी ही एक साँझ के समय पड़ोस की पीली कोठी के सामने कई मोटर गाड़ियाँ सामान से लदी आ खड़ी हुई थीं ।

पड़ोस की उस कोठी में नए किरायेदार आगये थे । मोटरें थी—नौकर चाकर थे—शान-शौकत थी—सब कुछ पश्चिमी !

नये किरायेदार रिटायर्ड जज थे । उनका युवा पुत्र दिल्ली की कोर्ट में फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट होकर आया था ।

दो चार दिन बाद पहिली बार जज साहब से सड़क पर भेंट हुई थी । उसने नमस्कार किया था । फिर तो रोज ही जब सुबह घूमकर वे लौटते तो प्रायः सड़क पर उनके दर्शन हो जाते थे । उनके लाल मुँह में जड़ी दो मटमैली आँखें ऐसी कुरूप थीं कि देखते ही वह घृणा से भर उठता था । नित्य की अहचिकर भेंट के कारण उसका सुबह का घूमना ही बन्द हो गया था । जज साहब के भयानक चेहरे को लेकर सुधीर

के मन में समूची कोठी के प्रति एक उत्कट घृणा का सम्बन्ध जुड़ गया था । जब भी वह अपनी छत पर होता तो सदा उस ओर पीठ देकर ही बैठता था ।

उस दिन सुधीर का एम. ए. संस्कृत का परीणाम आया था । परीक्षा में उसे अच्छी सफलता मिली थी । घर में पार्टी दी गई थी । पार्टी में जज साहब की भतीजी वसुन्धरा भी अपने चाचा के साथ आई थी । उसने गाया था । वसुन्धरा के गीत ने उसे अन्दर ही अन्दर छू लिया था ।

उसे कविता सुनाने के लिए कहा गया था । वह कविता सुना रहा था । तभी वसुन्धरा ने उसकी ओर देखा था । मारे संकोच के उसकी जीभ बीच ही में लड़खड़ा गई थी । सब हँस पड़े थे ।

माँ ने दबे गले से कहा था—“एम. ए. हो गया पर इसका बचपन नहीं गया ।” पिता चुप रहे थे । बड़े भइया हँस रहे थे । और भाभी उदास थीं ।

पार्टी से उठकर वह इसी खिड़की के पास आ बैठा था । उस दिन भी ऐसे ही मटमैले बादल आकाश में अलग-अलग भटक रहे थे । तब इन बादलों को देखते-देखते जीवन में पहिली बार न जाने कैसे कितने प्रश्न उसके अन्दर ही अन्दर ध्वनित हो उठे थे—

पुरुष-नारी-वासना-पाप-पुन्य और न जाने क्या-क्या ! फिर अन्त में चित्रित हो आती थी वह जज साहब की भतीजी—वसुन्धरा !

पार्टी में वसुन्धरा उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठी थी । साँवला रंग, बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखें, हँसते होंठ और कजराले पलक, दो लम्बी चोटियाँ जिनमें एक सामने की और टेबिलफोन की हवा में लहरा रही थी ।

साड़ी का छोर बार-बार अंगुली में लपेटती थी । फिर न जाने क्या सोचकर मुस्काती सी उस छोर को छुड़ाकर एक ओर झटक देती थी ।

सुधीर ने कई बार छिपती आँखों से उसकी ओर देखा था । जज साहब की ओर देखकर उसका मन विरस हो उठा था ।

सुधीर आज सोचता है तो अवाक् रह जाता है कि जिसका ध्यान कभी इस तरह किसी लड़की की ओर नहीं गया सो कैसे एक ही दृष्टि में वसुन्धरा को लेकर विमूढ़ हो उठा था । क्या यही होती है नियति ! मोहमयी छलना !!

फिर वासना की ज्वाला में घुटती यौवन की उच्छ्वासों को लेकर वर्षा की सूनी रातें, जाग-जाग कर बिता दी थीं किन्तु शिशिर का वह उन्माद ! किसी भी तरह न सह पाया था । तब वसुन्धरा को लेकर उसने एक खण्ड-काव्य की रचना कर डाली थी । पुस्तक प्रकाशित हुई थी और एक दिन नौकरानी के हाथ उस तक पहुँचा भी दी थी । उत्तर में वसुन्धरा की एक छोटी सी चिट आई थी—

“कृतज्ञ हूँ ! धन्यवाद !”

फिर आई थीं—कैसे भी न कटने वाली ग्रीष्म की लम्बी दुपहरियाँ !

मई का महीना था । वसुन्धरा के घर वाले किसी सम्बन्धी की शादी में कानपुर गये थे । घर में पुरानी दासी और नौकर था । वसुन्धरा उसी साल एफ. ए. की परीक्षा में बैठ रही थी । इसलिए कानपुर नहीं गई थी । घर में वह अकेली थी ।

कितनी बार वसुन्धरा से मिल आने के लिए पागलों की तरह उसकी कोठी के द्वार तक वह गया था किन्तु मारे संकोच के किसी भी तरह एक बार भी उस फाटक को न खोल पाया । चुपचाप लौट आया था ।

ऐसे ही दिनों में वसुन्धरा की दासी ने आकर उसे एक चिट दी थी—

“हमारे यहाँ आजकल कोई नहीं है । चाय पर आजाइये । आज ही छः बजे शाम को ।”

पढ़कर अन्दर ही अन्दर कोई पुकार उठा था—“आखिर भगवान्

ने सुनली है उसकी पुकार ।”

जब कोठी में पहुँचा तो उसी दासी ने बड़े हॉल के पास वाले एक कमरे में जाकर उसे खड़ा कर दिया ।

वहाँ पहुँचते ही वसुन्धरा ने उठकर नमस्कार किया और एक मीठी मुस्कान से उसके मर्म को छू लिया । सुधीर एक कुर्सी पर सिर झुका कर बैठ गया । तभी पास के कमरे से अँग्रेजी पोशाक पहिने एक उद्धत युवक ने सिगरेट का घुआ उड़ाते प्रवेश किया ।

वसुन्धरा ने चाय में चीनी मिलाते-मिलाते कहा—“आपसे मिलिए सुधीर एम० ए० मेरे पड़ोस ही में रहते हैं और आप मेरे प्रोफेसर मणि-कान्त डी० लिट० ।

सुधीर ने जैसे-तैसे सिर उठाकर उन्हें नमस्कार किया और फिर यथापूर्व सिर झुकाकर मेज पर बिछे मेजपोश की शिकन बारबार अंगुलियों से मिटाने लगा ।

कुछ देर उस कमरे में सन्नाटा रहा । अचानक वसुन्धरा और उन प्रोफेसर साहब के अट्टहास से कमरे की खिड़कियाँ तक खड़खड़ा गई ।

सुधीर एकाएक काँप गया । मुँह उठाकर जब उन लोगों की ओर देखा तो सब कुछ साफ होगया ।

वे दोनों सुधीर को इस तरह देख रहे थे जैसे वह चिड़ियाघर का कोई पशुविशेष हो ।

सहसा प्रोफेसर साहब हँसते-हँसते बोले—“आपके उस खण्ड-काव्य के लिए शुक्रिया ! क्या आजकल भी कोई प्रेमकाव्य लिख-लिखा रहे... ।” कहते-कहते वे फिर जोर से हंस पड़े ।

बीच ही में अपनी हँसी रोकती वसुन्धरा बोली—“प्रोफेसर साहब ! आप इन्हें बिलकुल गबदू ही मत समझिये । जब मुझे देखकर अपनी खिड़की से कविता गुनगुनाते हैं तब देखिये ।”

सुनकर प्रोफेसर साहब हँसते-हँसते चुप होगये । कुछ देर उसकी ओर देखते रहे, फिर गुरु गम्भीर स्वर में बोले—

“देखिये साहब ! शरीफों के पड़ोस में रहते हो । किसी लड़की को देखकर यह कविता गुनगुनाना और तरह-तरह की लफंगेबाजियाँ करना छोड़ दीजिये, नहीं तो दो-चार साल के लिए जेल में रख दिये जाओगे, इसीलिए आज तुम्हें यहाँ...।”

सुधीर बीच ही में चुपचाप कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया । कुछ देर स्थिर, अकम्प दृष्टि से उन दोनों की ओर देखता रहा । कुछ कहने के लिए उसके होंठ हिले, पर बोला नहीं सुधीर का लज्जित मौन ही उसका उत्तर था ।

जब धीरे से उसने कमरा छोड़ा तो जाते-जाते उसके कानों में फिर गूँज उठा वही—

निलज्ज अट्टहास !

एक मोटा कंठ-स्वर—“डर्टी गूज !”

और एक पतली काँपती हँसती आवाज—“गबदू !”

उस पीली कोठी से आकर इसी छतवाले कमरे में तकिये से मुँह छिपाये चुपचाप बहुत देर तक पड़ा रहा था और फिर वही प्रश्नों का घटाटोप—

सौन्दर्य धोखा ! प्रेम-वासना-जीवन धोखा ! पुरुष-प्रकृति सब धोखा ! धोखा ! धोखा !!

उस दिन की घटना के बाद से उसे लगता है जैसे उसकी निष्ठा, उसका विश्वास सब कुछ टूट गया है । वह किसी भी बात में मन नहीं लगा पाता । डरता है कि कहीं अन्त में वह भी धोखा ही न निकले । इस लिए छत के ऊपर वाले कमरे में अलग ही रहता है—घर-समाज से दूटकर !

—नितान्त एकाकी !!

×

×

×

सहसा विचारों की माला टूट गई । दाने बिखर गये । उसने खिड़की की चौखट पर ठोड़ी टिकाये आकाश की ओर देखा । वे शरद

ऋतु के मटमैले बादल जो थोड़ी देर पहिले आकाश में अलग-अलग भटक रहे थे, अब काले, कजरारे हो, उमड़-धुमड़ उठे हैं। रह-रहकर उन घने काले बादलों में दूर कहीं बिजली चमक उठती है।

आज बिजली की गड़गड़ाहट किसी का निर्लज्ज अट्टहास बनकर उसके हृदय में शूल की भांति बार-बार चुभ उठती है।

तभी हवा के ठंडे भोकों के साथ आई पानी की बौछारें! सुधीर वहाँ से हटा नहीं। वह पानी की उन तेज बौछारों को सीधा अपने मुँह पर ले रहा था।

जब से धोखा और अपमान का वह विष-डंक चुभा है तब से आत्म-पीड़न ही में उसे मुख मिलता है। इसीलिए बौछारों की वह चुभन उसके लिए सिहरन बन गई है और उसके अन्दर का दर्द हलका हो उठा है।

सुधीर के एकाकी जीवन को लेकर घर में कुछ दिनों काफी चर्चा रही, फिर सब कुछ शान्त हो गया। वह कब सोता है, कब जागता है इससे किसी को विशेष सम्बन्ध नहीं है। हां, सारे घर में एक भाभी हैं जिनका मन सदा सुधीर के चारों ओर भटकता रहता है पर वह भी आजकल मौन है। बहुत कम बोलती हैं।

पिछली रात पानी की बौछारों में जब सराबोर हो गया तो कुछ देर बैसा ही पड़ा रहा, फिर कपड़े बदल कर सोने की कोशिश की तो कैसे भी नींद नहीं आई।

जब सुबह का एकाकी तारा बुझ गया तो धीरे-धीरे सुधीर को झपकी सी आने लगी। तभी उसके बड़े भाई ने कमरे में प्रवेश किया।

सुधीर के बड़े भाई सफल डाक्टर हैं। अखाड़ेबाज कांग्रेसी हैं। इसलिए मन्त्रियों से लेकर प्राइममिनिस्टर तक उनकी पहुँच है। घर में वे जितना कम बोलते हैं, बाहर उतने ही अधिक हँसोड़ और मिलनसार हैं।

जब चमकते दांतों के नीचे होंठ का कोना दाब कर कहते हैं—
“अजी सब वकते है। मैं क्या किसी की पर्वाह करता हूँ।” तो अभिमान से उनकी गर्दन तिरछी होकर बाईं ओर थोड़ी सी खिंच जाती है।

उनींदे सुधीर के कानों ने सहसा उन्ही भाई साहब का कठोर कंठ-स्वर सुना।

“सुधीर !”

“— !”

“क्या अभी तक सो रहे हो ?”

“नहीं जी !” कहता-कहता वह उठ खड़ा हुआ। डॉक्टर साहब खड़े-खड़े ही बोले—

“तुम्हें देखने आज एक लड़की वाले आयेंगे। अभी नो बजे ! तय्यार रहना।”

“लेकिन...।”

“लेकिन वेकिन कुछ नहीं। जंगलियों की तरह यहाँ अकेले पड़े रहते हो। यह भी कोई जिन्दगी है ? हम सबने फ़ैसला कर लिया है...” कहते-कहते वे जाने लगे, फिर रुक कर बोले—

“कहीं जाना नहीं ! समझे ?”

“जी।”

× × ×
थोड़ी देर में माँ आईं। बोल — “ऐसे कब तक चलेगा सुधीर !”

“ठीक ही तो चल रहा है माँ !”

“नहीं बेटा ! तुमने पढ़-लिख लिया। अब कुछ कामधन्धा करो। दूसरों की कमाई पर कब तक चलेगा ?”

सुनकर सुधीर को लगा जैसे अन्दर ही अन्दर अचानक कुछ चुभ गया है। बार-बार एक शब्दहीन स्वर उसके कानों में गूँजने लगा—
“दूसरों की कमाई पर ! दूसरों की कमाई पर !!”

तभी माँ स्वर में मिठास भर कर बोलीं—

“आज लड़की वाले आ रहे हैं। कुछ पूछें तों ठीक-ठाक जवाब दे देना। करोड़पति हैं। तय हो गया तो इतना मिलेगा कि तेरी सारी जिन्दगी चैन से कट जायेगी। बस, यही चाहती हूँ बेटा ! अब मुझे क्या ज्यादा जीना है !” कहते-कहते उनकी आँखें छल-छला आईं।

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा फिर बोलीं—“सुधीर ! तू नहीं जानता कैसे-कैसे क्लेश सहे हैं मैंने इस घर में... बस चाहती हूँ तेरी शादी हो जाये तो बेटा ! काशी-हरिद्वार कहीं चली जाऊँ...” कहते-कहते उनका गला फिर भर आया।

आज माँ की बातें सुनकर सुधीर अवाक् रह गया । माँ को सदा उसने गम्भीर ही देखा था । आज जीवन में पहिली बार उनकी छल-छलाती आँखें देखीं थीं । कई बार उसके मन में आया कि पूछले— क्या था उनका क्लेश ?

तभी माँ बोली—“भइया ! तू बड़ा हो गया । सब कुछ समझता क्यों नहीं ?” कहती-कहती वे चली गईं ।

थोड़ी ही देर बाद किसी ने होले से किवाड़ पर थपकी लगाई । उस थपकी में जो मिठास था सो पहिचानने में सुधीर को देर नहीं लगी ! सुधीर की भाभी नास्ता लेकर आई थीं ।

वह सिर झुकाये बोला—

“तुम यहां क्यों आईं भाभी ! मैं भी नीचे आजाता । बुलवा क्यों नहीं लिया ?”

“मैं जानती थी कि आज तुम नीचे नहीं आओगे ।”

“क्यों ?”

भाभी ने जवाब नहीं दिया । कुछ देर वे चुप रहीं फिर गर्म चाय कप में उड़ेलती बोलीं—“सुधीर ! ऐसे कब तक बचते रहोगे ? कमरे के किवाड़ बन्द कर पड़ जाने से ही सब नहीं टल जायेगा ।”

“लेकिन भाभी.....।”

“तुम आदमी की तरह खड़े क्यों नहीं होते ? क्यों रहते हो इस तरह छिपे-छिपे.....।”

“भाभी ! तुम्ही कहदो न भइया से !”

“क्या कह दूँ ?”

“तुम सब कुछ तो जानती हो ।”

सुनकर भाभी सुधीर के चेहरे को एकटक देखती रही । देखने-देखते न जाने क्यों उनका चेहरा सहसा तमतमा आया । फिर लगा जैसे उनके पीले चेहरे पर काली बदली सी छा गई है ।

चाय का कप सुधीर की ओर सरकाती वे बोलीं—“सुधीर ! अगर मैं लड़का होती तो.....” कहते-कहते उनका गला भर आया ।

कुछ देर वे चुप रहीं फिर बोलीं—“मुनो ! जो तुम चाहते हो सो कहते क्यों नहीं साफ-साफ—क्या चाहते हो तुम ?”

भाभी की उस व्यथाभरी फिड़की में कितना क्षोभ था !

सुधीर ने सिर उठाकर भाभी की ओर देखा । उनका समस्त चेहरा न जाने कैसी दीप्ति से सहसा आलोकित हो उठा था । वे काँपते कंठ से बोलीं—“कब तक पूजते रहोगे इन जड़ पत्थरों को.....” कहते-कहते वे टूट आईं । कुछ देर चुप रहीं फिर बोलीं—

“सुधीर ! मेरा दर्द मेरी लाचारी बन गया है । तुम पुरुष हो । दर्द को जीत क्यों नहीं लेते ? भागते क्यों हो ? क्यों नहीं.....” कहते-कहते एक अदम्य आवेग से उनका गला रुँध आया । फिर बात पूरी किये बिना ही उठ कर चली गई !

सुधीर जाकर चारपाई पर लेट गया । वह आँखें बन्द किये चुपचाप पड़ा था पर आज रह-रह कर न जाने कैसी-कैसी जिज्ञासाएँ गुंजलक खोलती, फन उठाये उसके सामने आ खड़ी होती हैं । माँ कहती हैं—“सुधीर ! तू नहीं जानता । कैसे-कैसे बलेश सहे हैं मैंने इस घर में....” क्या थे माँ के बलेश ? क्यों सहे ?

भाभी का टूटता क्षुब्ध स्वर—“सुधीर ! मेरा दर्द मेरी लाचारी बन गया है.....तुम पुरुष हो.....दर्द को जीत क्यों नहीं लेते ? भागते क्यों हो ?.....”

सहसा उसे बचपन की एक बात याद हो आई—

×

×

×

तब वह लगभग आठ वर्ष का था । कैसी काली अंधियारी रात थी । उसे नींद नहीं आ रही थी । सहसा उसने देखा था माँ, भइया और पिताजी बाहर के दलान में धीरे-धीरे कुछ बातें कर रहे हैं—माँ

रोई थीं—गिड़गिड़ाई थीं... भइया और पिताजी ने उन्हें झिड़का था... सुबह हुआ था घर में अड़ीसी-पड़ीसी आये थे । अचानक भइया डिङकारी मारकर रो पड़े थे..... तब उसने जाना था कि उसकी पहिली भाभी अचानक रात को स्वर्ग सिधार गई हैं । वह मृत भाभी को देखना चाहता था । उसे कमरे में जाने से रोका गया था । उसने खिड़की से झाँक कर देखा था । भइया मृत भाभी के पास बैठे रो रहे थे—पास ही पिताजी गम्भीर मुँह बनाये बैठे थे ।

रात भर सब शान्त रहे... फिर सुबह ही अचानक सबके सामने भइया क्यों रो पड़े थे ?... माँ किसलिए गिड़गिड़ाई थी ?..... भइया और पिताजी ने उन्हें क्यों झिड़का था ?..... इस रहस्य को वह आज तक नहीं समझ पाया ।

पहिली भाभी की मृत्यु के बाद भइया ने उनका बड़ा फोटो सुनहली फ्रेम में जड़वाया था । बीचके कमरे में टाँग दिया था । कुछ दिनों उसे फूल की मालाओं से सजाया था फिर दूसरे मास ही फोटो उतार दिया गया था । भइया की बारात गई थी । वह घोड़े पर उनके साथ बैठा था । घर में दूसरी नई भाभी आई थीं । नई भाभी उम्र में सुधीर से पाँच-छः वर्ष ही बड़ी थीं ।

नई भाभी चुपचाप अकेली कमरे में बैठी थीं । वह झिझकता-झिझकता कमरे में गया था । नई भाभी ने घूँघट उठाया था । हाथ बढ़ा कर उसे अपने पास बुलाया था । फिर घूँघट उठाकर जिस तरह उन्होंने सुधीर को देखा था सो उसे बहुत अच्छा लगा था । इससे पूर्व इस तरह उसे किसी ने नहीं देखा था ।

उन्होंने अपने बक्स से निकाल कर उसे मिठाई खिलाई थी । वे अपने साथ मिठाइयाँ लाई थीं । कहानियों और चित्रों की किताबें लाई थीं । सारे दिन वह उन्हीं के साथ रहा था । राँझ हुई थी । उन्होंने कहा था—“तुम यहीं मेरे पास सोना ।”

सुनकर वह डर गया था—कहा था—“यह तो भइया का कमरा है—वे मारेंगे।”

सुनकर मारे भय के उनकी बड़ी-बड़ी स्वच्छ आँखें और अधिक फैल गई थीं—पूछा था—“तुम्हारे भइया तुम्हें पीटते हैं ?”

जवाब में उसने अपनी पीठ खोल कर उन्हें दिखा दी थी। पीठ पर नजाने उन्होंने ऐसा क्या देखा था कि खींचकर उसे छाती से चिपटा लिया था—दोनों हिचक-हिचक कर रोये थे। तभी बाहर से भइया आये थे और वह भाग आया था।

भाभी के आँसुओं से गीली साँझ को रात की अधियारी ने धीरे-धीरे लील लिया था। वह माँ के पास बिछी चारपाई पर आँखें बन्द किये चुपचाप लेटा था पर प्राण अपनी नई भाभी के पास थे। कैसे भी उसे नींद नहीं आ रही थी। तभी उसके कानों में घर की पुरानी दासी का धीमा कंठस्वर सुनाई पड़ा था। उसके कानों ने पहिचाना था कि दूसरा धीमा स्वर उसकी अपनी माँ का है.....

वह लेटा-लेटा आँखें बंद किये सुन रहा था। माँ अस्पृष्ट स्वर में बोली—“धीरे बोल.....बच्चा पास है।”

सुनकर उसकी उत्सुकता बढ़ गई थी वह और अधिक सावधानी से सुनने लगा था। तभी नौकरानी का द्रवित किन्तु क्षुब्ध स्वर सुनाई पड़ा था—“मालकिन ! बहू रानी अभी बच्चो हैं। आप जाकर बड़े बाबू को कुछ कहती क्यों नहीं ? ऐसे भी कहीं होता है.....कुछ करो मालकिन.....।”

तभी भइया के कमरे में हवा को चीरता हुआ आया था—एक चीत्कार !

वह चीख पड़ा था—“माँ s s s”

सुबह होते न होते अधियारे में ही वह भाभी के कमरे की ओर दौड़ा गया था। भइया कमरे से बाहर निकल रहे थे। उन्हें देखकर

वह खम्भे से छिप गया था। जब वे दूर निकल गये तो धीरे से भाभी के कमरे में जा पहुँचा था।

वहाँ कमरे में जाकर उसने जो कुछ देखा था सो देखते ही चीख पड़ा था। उसकी चीख सुनकर भइया वापिस दौड़ आये थे। वह दोनों हाथों से आँखें बन्द किये खड़ा था। उसकी पिंडलियाँ जोर-जोर से काँप रही थीं।

सहसा भइया का धक्का खाकर दूर जा पड़ा था। भइया उसे घसीटते बाहर लाये थे। माँ के कमरे में पटककर चलने लगे थे। सुधीर को भइया द्वारा इस तरह रोज-रोज पीटने-पटकने को लेकर माँ ने झगड़ा किया था। पिताजी आये थे। माँ को डाँटा था। माँ रोई थीं। वह घर से निकलकर चला गया था। शाम तक घर नहीं आया था।

उस दिन सुबह के धुँधलके में अपनी नई भाभी को जिस तरह पलंग पर पड़ा देखा था सो आज तक कैसे भी नहीं भूल पाया। वही आज रह-रहकर उसे याद आ रहा था—

पीला मुँह—बन्द आँखे—खून में सनी साड़ी...

× × × ×

वही भाभी थोड़ी देर पहले उससे कह गई है—“सुधीर ! मेरा दर्द मेरी लाचारी बन गया है। तुम पुरुष हो। दर्द को जीत क्यों नहीं लेते ? भागते क्यों हो ?”

उसे लगा जैसे आज तक जिन उत्पीड़क और निर्दयी बड़े भइया तथा पिताजी ने बचपन से उसे पीटा है—बेंतों से सड़ोका है, सो उन दोनों का सारा डर, भय एवं आतंक धुल-पुछकर साफ हो गया है।

तभी पिताजी का भारी कंठ स्वर सुनाई पड़ा—

“सुधीर !”

सुधीर चारपाई से उठकर खड़ा हो गया। उसने पिताजी की ओर

देखा । आज उनका चेहरा उतना गम्भीर नहीं था । वे अन्दर कमरे में आये और आराम कुर्सी पर बैठ गये । सुधीर कमरे के बीच में खड़ा था । बोले—

“खड़े क्यों हो ? कुर्सी खींचलो । बैठ जाओ ।”

सुधीर ने अनुभव किया कि उस स्वर में सदा की भाँति आज खर-खराहट और कर्कशता नहीं है । वे बोले—

“लड़की वाले आ रहे हैं ।”

थोड़ी देर पहिले उसकी भाभी उसमें जिस पौरुष को जगा गई थीं, वही उसका सजग पौरुष बोला—

“लेकिन पापा ! मैं नहीं चाहता कि……।”

सुधीर के पापा बरस पड़े—

“तुम्हारे चाहने न चाहने की बात नहीं है । ब्याह करो और बहू को लेकर अलग रहो । कितनी कंसी बातें हैं सो तुम नहीं जानते । मैं चाहता भी नहीं कि वे बातें तुम जानो ।”…… कहते-कहते उनकी जीभ लड़खड़ा गई ।

सुधीर का वह सारा पौरुष गलकर पानी-पानी हो गया । उसके मन-प्राण उस भेद को, उन सब बातों को जान लेने के लिए अन्दर ही अन्दर घुटने लगे । चाहा कि मुँह खोलकर पूछ ले कि क्या हैं वे बातें ? क्या है वह रहस्य ? पर किसी भी तरह उसके होंठ नहीं खुले ।

तभी उसके पिता गुरु गम्भीर स्वर में बोले—

“जाओ—उठो—नहा धो लो । वे आने ही वाले हैं ।”

सुधीर बैठा रहा । पिता जी ने उसकी ओर चुभती दृष्टि से देखा । उनका समस्त चेहरा गर्म ताम्बे की भाँति तमतमा उठा । वे गरजते बोले—

“जा SS ओ SS S S ।”

सुधीर उठकर चला गया ।

आज का युग 'मत्स्यन्याय' का युग है। जिसमें मछलियों की भांति मनुष्य मनुष्य को खाकर जीना चाहता है। हमारी मित्रता, शादी ब्याह धर्म, राजनीति सबके पीछे एक ही वृत्ति है—एक ही दृष्टि है—शोषण ! एक दूसरे को प्रच्छन्न रूप से निगल जाना। इसीलिए हमारे समाज में जो जितना बड़ा शोषक है उसे उतना ही अधिक सम्मान प्राप्त है।

आज सुधीर के घर में भी ऐसे ही कुछ बड़े मच्छ इकट्ठे हो रहे थे।

मेरठ से लड़की का सम्बन्ध लेकर जो सेठ जी घर में आ रहे थे; उन्हीं की सब ओर चर्चा थी। चर्चा के उन सूत्रों को जोड़कर सुधीर ने जान लिया था कि घर में लड़की अकेली सन्तान है इसलिए पिता के बाद सारी सम्पत्ति इसी घर में खिंच आएगी।

पिछले दिनों लड़की के पिता किसी मुकद्दमे के सिलसिले में उसके पापा से मिले थे तभी इस रिश्ते की बात चल पड़ी थी। लड़की के पिता रिश्ता करके वकील साहब से अपने बड़े-बड़े काम निकलवाना और डाक्टर साहब के परिचय का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहते थे। इधर डाक्टर और वकील साहब की आँखें सेठजी की विपुल सम्पत्ति पर लगी थीं।

इसीलिए आज सबेरे से 'सुधीर' नाम के उस पशु विशेष की सार सँभाल हो उठी थी कि मोलभाव के समय कहीं अचानक वह बिदक न जाए !

दिनके नौ बजते-बजते घर के सब प्राणी सुधीर को घेरकर बीच वाले बड़े कमरे में बैठ गये। भाभी खिन्न मन किवाड़ के पीछे खड़ी थीं।

आज सारा घर विशेष रूप से सजाया गया था। अचानक सवा नौ बजे बाहर लगी घंटी बज उठी। भइया दौड़े-दौड़े बाहर आये। सेठ जी को लेकर जब वे अन्दर आये तो पिताजी ने दौड़कर उनसे हाथ मिलाया। पिताजी बिना बात के अस्वाभाविक ढंग से बार-बार हँस पड़ते थे।

आगन्तुक बड़े मच्छ के चारों ओर छोटे-छोटे मच्छ बैठ गये। सेठ जी अपने भारी भरकम शरीर को आराम कुर्सी में टिकाकर सुधीर की ओर उन्मुख होकर बोले—

“अच्छा, तो आप ही हैं सुधीरबाबू ?”

सुधीर सोचने लगा—अब शुरू हुआ क्रय-विक्रय का निर्लज्ज व्यापार ! सेठ जी गला साफ करके बोले—

“हाँ, क्या नाम तो बेटा ! क्या करते हो आजकल ?”

सुधीर का मन हुआ कि उठकर भाग जाये। सिर उठाकर उसने एक बार सेठ जी को देखा फिर बोला—

“महाकवि कालिदास पर थीसिस लिख रहा हूँ।”

“हाँ, क्या नाम बताया था आपके पापा ने संसकिरित एमें किया है—अच्छा है.....बड़ा अच्छा है . लेकिन क्या नाम...ये थीसिस लिख-लिखाकर क्या करोगे ? कुछ धन्धा करो..... शेयर का बिजनेस है.....एक्सपोर्ट इम्पोर्ट..... कालिदास मरमरा गये बेटा ! अब क्या रक्खा है उन बातों में.....क्यों वकील साहब ! ठीक है न वे बात.....।”

पिताजी खीसें काढ़ते बोले—“हाँ-हाँ क्यों नहीं..... यह तो है ही.....यही तो मैं इसे समझता हूँ। अब यह हमारा लड़का सुबोध है.....डाक्टर है और साथ ही वह क्या खुला है.....कैसा समाज.....उसका मंत्री है.....ऊपर तक मिलना जुलना होता है... मंत्रियों से मिलजुलकर टैक्सियों के पाँच तो लाइसेन्स ले लिये हैं।

दो ट्रक चलवाता है। चोर बाजार का माल भर-भरकर बाहर भिजवाता है। पुलिस खड़ी देखती रहती है। मजाल है कि चूँ करे। अब लोग कहते हैं कि चोर बाजार का काम ठीक नहीं है.....।”

बीच ही में अपने चमकते दाँतों से ओंठ का कोना दाबकर डा० सुबोध बोले—“अजी सब बकते हैं। मैं क्या किसी से डरता हूँ?” कहते-कहते अभिमान से उनकी गर्दन थोड़ी तिरछी होकर बाईं ओर खिच गई।

डाक्टर और वकील साहब की बातें सुनकर सेठ जी गद्गद हो उठे। भाव-विह्वल हो अपने भारी भरकम शरीर को हिला-डुलाकर उन्होंने थोड़ी सी बैठक बदली और बोले—

“अजी सब बातें हैं। चोर बाजार तो चलेगा। एक बार नहीं हजार बार। ग्राहक जानता है कि कौनसी चीज किस चोर बाजार में मिलेगी—कौन अक्सर रिश्वत लेता है—सो क्या पुलिस नहीं जानती? पर तुम जानो इस काले बाजार और रिश्वत से तो सबकी जेबें भरती है। घर आई माया किस बुरी लगती है? जे बात पारलिया-मेन्ट में भी कही क्या नाम है उस भक्की सिन्धो नेता का हाँ जी वह किरप्लानी उसने कहा पंडित जी ने सुना। सबने सुना पर कुछ हुआ? अजी चलती का नाम गाड़ी है जो हिचका सो गया रुका सो मरा मैं तो जे सीधी सी बात जानता हूँ क्यों जी?।”

पिता जी और भइया दोनों एक साथ बोल पड़े—

“हाँ जी सो तो है ही वस यही बात है ! यही बात !!”

“वे तीनों बड़े मच्छ अपनी दाव-पेंच की बातों में ऐसे उलझे कि सुधीर की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। किसी ने देख ही नहीं पाया कि उसके अन्दर ही अन्दर कब कैसी काली घन-घटायें घिर-घिर

कर उमड़ने धुमड़ने लगी थीं। अचानक बिजली की भाँति तड़पकर वह बोला—

“आप लोगों की यही बात तबतक है जबतक चीन की तरह चोर बाजार के चोरों को इकट्ठा करके उनकी गर्दन नहीं काट दी जाती ! चोर-डाकू-हत्यारे !!”

चीखता पुकारता सुधीर कमरे से बाहर चला गया।

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा। फिर सेठ जी सूखे कंठ से थूक निगलकर बोले—

“जे का बात है ?”

पिता जी भरपूर स्वर में बोले—

“भेरी भी कुछ समझ में नहीं आता। आज तक कभी हमारे सामने सिर उठाकर नहीं बोला। आज इसे हो क्या गया ?”

डाक्टर सुबोध किसी रहस्य को मन ही मन सुलभाते बोले—

“भे समझता हूँ ! सब समझता हूँ !!”

×

×

×

×

सेठ जी चले गये। उस दिन घर में लगता था जैसे कोई मर गया है। मातम-सा छाया हुआ था। सब के मुँह बुझ गये थे पर सुधीर की भाभी को लग रहा था जैसे आज उसने सब कुछ पा लिया है।

भाभी रसोई घर में अकेली बैठी है। आँखें खुली हैं पर लगता है जैसे न कुछ देखती हैं, न कुछ सुनती है, न कुछ समझती है कि अभी-अभी घर में क्या-कुछ घट गया है कि अब आगे क्या-क्या घट सकता है...वे जड़ प्रतिमा-सी चुपचाप बैठी हैं।

उसी दिन वकील साहब किसी मुकद्दमे के सिलसिले में चार बजे की गाड़ी से कलकत्ते चले गये। डाक्टर सुबोध जब साँझ के समय डिस्पेंसरी से लौटे तो अति गम्भीर थे। जब वे इस तरह गम्भीर होते हैं तो

उनकी ठोढ़ी विशेषरूप से नीचे की ओर झुक आती है और जबड़े इस तरह चल उठते हैं जैसे कुछ चबा रहे हैं ।

वे बिना कुछ खाये-पिये जबड़े चलाते-चलाते अपने कमरे में चले गये ।

जाड़े के दिन थे । उस दिन दोपहर को पानी बरस गया था । इस लिए जाड़ा बढ़ गया था । पता ही न चला कि कब दोपहर ढल गया, कब धूमिल गीली सांभ आई और कब दिन के उस धुंधले मटमैले प्रकाश को रात की अंधियारी ने ग्रस लिया पर सुधीर जो सुबह उठकर गया सो रात की अंधियारी में भी लौटकर नहीं आया ।

रात का सन्नाटा है । माँ को नींद नहीं आ रही है । वे बार-बार कोठी के प्रमुख द्वार तक जाती हैं । सड़क पर दूर तक देख आती हैं फिर लौटकर चुपचाप कमरे में लेट जाती हैं । उन बूढ़ी आंखों से अब सूझता ही कहाँ है । पर करें क्या ? चुप होकर बैठा भी तो नहीं जाता ।

जाड़े में माँ बार-बार बाहर निकली थीं । इसलिए खाँसी का दौरा उठ खड़ा हुआ और तब विवश हो वे बिछौने पर जा पड़ीं । बिछौने पर पड़ते ही अचेत हो गईं ।

आधी रात बीत गई । सुधीर की भाभी चुपचाप सिमिट कर अपने कमरे में लेटी हैं । खिड़की और द्वार खुले हैं जैसे आज के जाड़े की चुभन उनके पीले जर्जर शरीर से टकराती है किन्तु कुंठित होकर दूर जा पड़ती है ।

भाभी पड़ी-पड़ी सोचती हैं—कहाँ है आज जाड़ा ? उस भगोड़े के लिए जाड़ा नहीं है तो मेरे लिए ही क्यों ?

ठिठुरकर जमा हुआ धुआँ धीरे-धीरे कमरे में भरता जा रहा है । भाभी लेटी हैं—

निरायास—निष्कम्प—स्थिर !

आँखें खुली हैं !!

लगता है जैसे पुतलियों की राह होकर उस ठिठुरे धुएं को—अपने दर्द को धीरे-धीरे चुपचाप पिये जा रही हैं ।

भीगी रात के उदास सन्नाटे में जब सुधीर लौटा तो आधी रात ढल गई थी । आकाश गंगा का उज्ज्वल बुभुक्षा जा रहा था ।

उसने जूते नहीं खोले । जैसा का तैसा चारपाई पर पड़ गया । कमरे में जितने भी कपड़े थे उन सबको अपने ऊपर लाद लिया पर कैसा है यह जाड़ा ? साँस तक पूरी नहीं आ रही थी । जोर-जोर से दौंती किटकिटा रही थी ।

वह एक-एक साँस के लिए लड़ रहा था । सहसा जी मितलाने लगा । उसने चाहा कि कमरे से उठकर बाहर चला जाये पर कैसे भी उठ नहीं पाया । उसे उलटी आई । तभी भाभी ने कमरे में प्रवेश किया ।

× × × ×

कमरा साफ करके भाभी नीचे रसोई में गई । चाय बनाकर लाई । चाय पीकर जब सुधीर का जी कुछ हल्का हुआ तो अचानक सारी कोठी की बिजली चली गई । कमरे में अंधियारा भर गया ।

सुधीर ने धीरे से कहा—

“भाभी ! अब तुम जाओ ।”

“क्यों ?”

“भइया की आदत तो तुम जानती ही हो ।”

“नहीं सुधीर ! अब मैं बहुत थक गई हूँ ।”

“लेकिन भाभी.....”

“सुधीर ! अब मुझे डर नहीं है । आज मैंने सब पा लिया और सब खो दिया ।”

फिर दोनों में से कोई भी न बोला । धीरे-धीरे कमरे का वह सन्नाटा

और अंधकार उन दोनों पर भय बनकर छा गये।

सुधीर आँखें बन्द किए चुपचाप लेटा है। सुबह न जाने कैसे वह इतना बड़ा साहस कर बैठा था पर अब रह-रहकर उसकी बन्द आँखों में पिताजी और भइया की न जाने कैसी भयंकर शक्तें बन-बनकर आती हैं और वह काँप जाता है।

तभी उसे याद आया कि पिताजी आज चार की गाड़ी से कलकत्ते चले गये होंगे। याद करके एक आश्चर्य साँस आई और तभी बन्द आँखों में ओंठ काटते भइया की चमकती बड़ी फटी आँखें, बँधी भारी मुठ्ठियाँ—गुस्से में तमतमाता चेहरा रह-रहकर दिखने लगा।

भाभी बिछीने पर कुछ देर चुपचाप बैठी रहीं। फिर सहसा उस पर झुक आई।

एक गर्म आँसू—टप्—फिर अनेकों, एक कांपता भर्राया स्वर—

“भाभी !”

भाभी और झुक आई। कुछ अस्फुट-सा धीरे-धीरे बोलने लगीं—
“सुधीर ! मैं औरत हूँ ! धचपन में माँ-बाप ने तुम्हारे भइया के हाथ बेच दिया.....सच सुधीर ! मैं लड़का होती तो.....तो.....
आग लगा देती.....सब जला देती, सब राख कर देती.....आह !...
सुधीर तुम नहीं जानते मेरे अन्दर ज्वालामुखी है.....ज्वालामुखी !”

कहते-कहते भाभी जोर-जोर से काँप उठीं। उनकी दाँती बज उठी और अँगुलियाँ कड़ी होती गईं।

कुछ देर वे चुप रहीं फिर उनके शरीर का दबाव बढ़ता गया।

सुधीर समझता है उस दबाव को। उस दबाव का भी कुछ अर्थ है। अब उसे भय नहीं है। उस दबाव में कवच जैसी शक्ति है—जो भय की धार को मोड़ देती है।

भाभी की काँपती अँगुलियाँ न जाने क्या खोजती इधर-उधर घूमने लगीं। सुधीर ने जाना कि उसका भी कुछ अर्थ है।

आज उसे वही सब कुछ मिल रहा है जिसकी एक बूँद के लिए वह बचपन से तरसता आ रहा है।

तभी रुँधे कंठ से भाभी बोलीं—“सुधीर ! मेरे अन्दर की माँ मर गई है। बच्चा जनने की शक्ति भगवान् ने मुझ से छीन ली है। आज तक मैं तुम्हारी माँ होकर ही जीती आ रही हूँ और तुम गये थे अपने को मिटा डालने ? बोलो तुम क्यों गये ? क्यों ?”

कहते-कहते भाभी सिसक उठी।

“लेकिन भाभी ! तुमसे किसने कहा ? कैसे जाना तुमने ?”

“सुधीर ! जब कोई किसी को अपने में समा लेता है तब कहने सुनने की बात नहीं रहती। मेरी यह देह यहाँ पड़ी थी और प्राण तुम्हारे चारों ओर भटक रहे थे……।” कहते-कहते वे चुप हो गईं।

फिर न जाने किस तरह का अदम्य उद्वेग उनके अन्दर ही अन्दर उठा ! वे जोर से भरपूर स्वर में बोलीं—

“बोलो ! क्यों गये थे तुम अपना घात करने ! क्या मेरे भटकते प्राण ही आज तुम्हें यहाँ नहीं खींच लाए हैं ?”

“भा…….भी !”

उसी समय लगा जैसे अचानक किसी तूफान ने एक धक्के से किवाड़ों को खोल दिया है। कमरे में सुधीर के बड़े भइया आ खड़े हुये। उन्होंने आते-आते केवल इतना सुना था—

“क्या मेरे भटकते प्राण ही आज तुम्हें यहाँ नहीं खींच लाये हैं ?”

भाभी सुधीर को छोड़कर धीरे से उठकर खड़ी हो गई।

डा० सुबोध गरजते बोले—

“बाहर आओ।” कहकर वे कमरे से बाहर चले गये।

भाभी ने उठते-उठते शान्तस्वर में कहा—“सुधीर भइया ! तू नीचे मत आना। तुझे मेरी सौगन्ध है। जो आयातो मेरा मरा मुँह देखे।”

कहकर भाभी चुपचाप वहाँ से चली गई ।

×

×

×

×

भइया के कमरे में द्वार के पास भाभी चुपचाप खड़ी थीं । सामने खड़े थे भइया । उनकी आँखें भूखे शेर की भाँति चमक रही थीं । वे तड़पकर बोले—

“अरे ! मैं तो वर्षों से जानता हूँ । लोहू का घूँट पीकर रह जाता था । लेकिन आज सब साफ हो गया । उस आकार ने यह जो प्रेम-काव्य छापा है सो क्या मैं नहीं जानता कि किसको लेकर लिखा है ?” कहते कहते उनके सामने कलम-कागज फेंक कर बोले—

“लो यह कलम-कागज और लिखो कि तुम सुधीर को प्यार करती हो—कि तुम आज रातभर उसके कमरे में रही हो—लिखो कि तुम अपने आप मर रही हो, कि तुम्हें किसी ने मारा नहीं है ।”

सुनकर बीच ही में वे शान्त स्वर में बोलीं—

“देखो ! सफाई देकर मैं छोटा नहीं होना चाहती, लेकिन यह जो तुम लिखा रहे हो सो एक बार नहीं हजार बार लिख सकती हूँ । कोई भी माँ अपने बच्चे को प्यार कर सकती है और साथ लेकर कमरे में सो भी सकती है ।”

डाक्टर सुबोध फुंकारते बोले—

“अच्छा, तो तुम लोग माँ-बेटे हो ? वाहरे त्रियाचरित्र !”

वे बोलीं—“सुनो जिस तरह का कागज लिखा कर तुमने अपनी पहिली पत्नी को मारा था । वह मैंने पढ़ लिया है—मरने से पहले मैं अपनी घृणा को निकाल फेंकना चाहती हूँ ।।” कहते-कहते वे हाँफने लगी फिर बोलीं, “देखो—सुनो ! मैं तुम से नफरत करती हूँ— इतनी नफरत कि जितनी कभी किसी औरत ने अपने पति से नहीं की होगी । मैं मरती हूँ और तुम जिओ इस विष-डंक को छाती में चुभो कर कि तुम वह पुरुष हो जिसकी औरत उससे नफरत करती थी !

सुनकर डाक्टर सुबोध अवाक् हो मुँह फाड़े अपनी पत्नी की ओर देखते के देखते रह गये ।

तभी उनकी पत्नी तीव्र स्वर में बोलीं—“खड़े क्यों है ? मैंने अपने विवाह की जिन्दगी—पहिली रात चीत्कार और बेहोशी से शुरू की थी किन्तु आज चूपचाप और होश में मर सकूँगी ।” कहते-कहते वे काँपने लगीं फिर क्षुब्ध और आदेश भरे स्वर में बोलीं—“अब निकालते क्यों नहीं अपने मौत के इंजेक्शन और ज़हर।”

डा० सुबोध अवाक् जड़ित से अपनी पत्नी को देख रहे थे ।

उनका समस्त क्रोध पानी बन कर बह गया और उस पर तैर रहा था पत्नी के विश्वास का निष्कलंक कमल का फूल !

वे क्षण !

..... उसपर ऐसा नशा छाया हुआ था, जिसमें भाव्य-सम्भाव्य, दान प्रतिदान आशा-निराशा, सुख-दुःख सब कुछ मिट जाता है । यदि उन क्षणों में उसे फाँसी का दण्ड भी दिया जाता तो चुपचाप अपने आप ही उस फंदे को गले में डालकर प्राण दे देता.....।”

जाड़े के दिन थे और तूफानी रात ! जाड़े के दिनों में ऐसा तूफान उसने कभी भी नहीं देखा था । अचानक वर्षा-ग्रांथी से खिड़कियों के शीशे खनखना कर टूट रहे थे ।

सुधीर खिड़की के पास बैठा उस तूफान को देख रहा था । जब एक खिड़की का शीशा टूटकर खनखनाता ऊपर आ गिरा तो वहाँ से हटकर चुपचाप आराम कुर्सी पर जा बैठा ।

कमरे में नीला घुंघला प्रकाश था । वह आँखें बन्द किये आत्म-विस्मृत सा पड़ा था । तभी उसने सुना किवाड़ खुलने का शब्द ! और साथ ही ऐसा नारी कण्ठ ! जिसका सहज ही वह विश्वास न कर सका ।

उसने सुनी अपने ही नाम की एक अविश्वसनीय काँपती बुझी पुकार—

“सुधी बाबू ! सुधी बाबू ! !”

बिजली के नीले घुंघले प्रकाश में भीगे कपड़ों से अपनी लाज छिपाती वसुन्धरा खड़ी थी ।

कुछ देर वह अपनी दृष्टि पर विश्वास ही न कर सका ।

वह आवेग भरे स्वर में बोली—“सुधी बाबू ! मुझे बचालो ! !”

वह आश्चर्य-चकित सा बोला—

“क्यों ? क्या फिर कोई नया नाटक खेलने आई हो ?”

“चाचा मेरी जान ले लेना चाहते हैं । जल्दी करो सुधी बाबू !”

मुनकर सुधीर काँप गया । फिर हड़बड़ाता-सा उठ खड़ा हुआ ।
बोला—

“अच्छा ! ठहरो !!” कहता-कहता कमरे से बाहर आया । उसने भाँक कर वसुन्धरा की कोठी की ओर देखा । वर्षा की अंधियारी में रह-रहकर टॉर्च का प्रकाश चमक उठता है ।

सुधीर ने कमरे में आकर धीरे से कहा--“लगता है वे लोग तुम्हारी खोज कर रहे हैं ।”

“हाँ, सुधीबाबू ! अब मैं क्या करूँ ?”

“लेकिन क्यों हो रहा है यह सब ?”

‘वह फिर बताऊँगी । सुधी बाबू ! इस तूफान ने मेरी जान बचा ली नहीं तो अब तक चाचा मुझे काटकर जमुना में फेंक देते । मुझे बचा लो सुधी बाबू !...वे यहाँ भी आ सकते हैं...जल्दी करो...वे मुझे मार डालेंगे...वे मुझे मा...।’ कहती-कहती- वह जहाँ की तहाँ धड़ाम से गिर पड़ी ।

पिछली घटना को लेकर अब तक सुधीर पूरी तरह वसुन्धरा की बातों पर विश्वास नहीं कर पाया था किन्तु जब वह कमरे में अचेत होकर गिर पड़ी तब जाकर उस आसन्न संकट पर उसे पूरी तरह विश्वास हुआ ।

उसने सुना कि कुछ लोग उसकी कोठी के प्रमुख द्वार पर खड़े उसके पापा को पुकार रहे हैं ।

“वकील साहब ! वकील साहब !”

इधर कमरे में खड़ा-खड़ा सुधीर देख रहा था उस अचेत, अरक्षित वसुन्धरा को जिसने किसी दिन उसे विक्षिप्त बना डाला था । उधर जज साहब के आदमी टॉर्च का प्रकाश फैकते कोठी का फाटक खोलकर अन्दर आ गये ।

वह कुछ क्षण वसुन्धरा के पीले चेहरे और काँपते घने पलकों को एकटक देखता रहा तभी जागी उसमें न जाने कौनसी ऊर्ध्वगामी शक्ति

सत्प्रेरणा ! अरक्षित नारी की रक्षा करने का दवा अभिमान !! पुरुष का पौरुष !!

उसने फुर्ती से झुककर अचेत वसुन्धरा को हाथों पर उठा लिया और पिछवाड़े की सीढ़ियों से उतरता लुकते-छिपते अपनी कोठी से निकलकर बाहर सड़क पर आ गया ।

पानी का जोर बढ़ता जा रहा था । तभी सहसा कड़कड़ाहट के साथ बिजली चमकी । लगा जैसे बिजली टूटकर उन दोनों पर आ पड़ी है ।

उसी समय भाग्य से सड़क पर जाती टैक्सी दिखाई दी । सुधीर ने कंठ की सारी शक्ति लगाकर टैक्सी को रोक लिया ।

टैक्सी में वसुन्धरा को लिटाकर जब अपने एक मित्र के द्वार पर पहुंचा तो उसे चेत आ चुका था ।

मित्र से वह झूठ बोला । वसुन्धरा को अपनी पत्नी बताया । घर वालों से हुये कालानिक भगड़े की कहानी गढ़कर सुना दी ।

मित्र अतिशय सहानुभूति में गद्गद हो कर बोला—

“सुधीर ! इसे तुम अपना ही घर समझो । मेरी पत्नी मायके गई है । अच्छा है तुम लोगों के साथ थोड़े दिन चैन से कट जायेंगे ।”

मित्र अपने सोने के कमरे में दोनों को ले गया । पत्नी के बक्स में से निकालकर कुछ कपड़े दिये । वसुन्धरा ऊपर के कमरे में रह गई । वे दोनों नीचे चले गये । नीचे जाकर सुधीर ने भी कपड़े बदले ।

तभी सुधीर बोला—

“आनन्द ! बहुत कष्ट दिया है आज मैंने तुम्हें ।”

आनन्द हँसता-हँसता बोला—

“सुधीर ! तुम्हें मैं बचपन से जानता हूँ लकड़ी की पाटी पर ‘अ आ’ से लेकर संस्कृत एम० ए० तक हम एक साथ पढ़े हैं और उस मिट्टी

कोभी पहिचानता हूँ जिससे भगवान् ने तुम्हें गड़ा है। तुम किसी को कष्ट नहीं दे सकते लेकिन तुमने खबर तक नहीं दी। शादी कब हुई?”

सुनकर मारे लाज के सुधीर का मुँह लाल पड़ गया।

उसे देखकर आनन्द जोर से खिला-खिला पड़ा। फिर हँसी रोकता बोला—“अच्छा तो लवमैरिज हुई है? महाकवि कालिदास पर थोसिस लिखते-लिखते उनकी शकुन्तला भी खोज निकाली। अच्छा अब ऊपर जाओ भाभी प्रतीक्षा कर रही होगी। कण्व ऋषि के लताकुंज तो यहाँ नहीं हैं पर अपने इस गरीब भाई के घर……” कहते-कहते उसका गला भारी हो आया।

× × × /

सुधीर जब ऊपर के कमरे में आया तो वसुन्धरा कपड़ बदल चुकी थी। उसके चेहरे पर छाया आतंक मिट चुका था। वह शान्त बैठी थी।

सुधीर पर अब भी ऐसा नशा छाया हुआ था जिसमें भाव्य-संभाव्य दान प्रतिदान, आशा-निराशा, सुखदुःख सबकुछ मिट जाता है। यदि उन क्षणों में उसे फाँसी का दण्ड भी दिया जाता तो चुपचाप अपने आपही उस फन्दे को गले में डालकर प्राण दे देता।

कमरे में एक ही पलंग था। वसुन्धरा को उस पर लेटने के लिए कहकर चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया।

वसुन्धरा उठी नहीं। चुपचाप जहाँ की तहाँ बैठी रही। फिर धीरे से बोली—“सुधीर बाबू ! मुझे आज नींद नहीं आयेगी। मैं यहाँ बैठी हूँ। आप ही पलंग पर लेट जाइये।”

आज सुधीर को सब कुछ स्वीकार है। अस्वीकार करके खड़े रहने की शक्ति उसमें शेष नहीं है।

उसे लग रहा है जैसे वह देह हीन प्राणी है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है—जो कुछ थोड़ी देर पहिले घट गया है उसका कर्ता वह नहीं है। ये हाथ-पैर सब कुछ उसके अपने नहीं है।

वह अनासक्त है ! सबसे असम्पृक्त !!

×

×

×

×

बहुत देर तक वह चुपचाप पलंग पर लेटा रहा फिर पता नहीं कब भपकी आ गई । अचानक किसी मृदु निष्कम्प स्पर्श से जाग गया । कमरे में अंधकार था । सुधीर की आँखों ने अपने ऊपर छाये वसुन्धरा के आकार को पहिचाना । सुधीर को लगा जैसे उसकी जड़ता मिट गई है किन्तु फिर भी वह रुद्ध-कंठ और स्तब्ध-प्राण है ।

बहुत देर तक दोनों जहाँ के तहाँ चुपचाप बैठे रहे । तब सुधीर ही धीरे से बोला—

“वसुन्धरा ! मैं जानता हूँ कि आज तक तुम मुझ से घृणा ही करती आई हो—आज संकट में पड़कर—अनुग्रहीत होकर जैसा आचरण तुम कर रही हो उससे मेरा क्लेश ही बढ़ता है—सुख नहीं मिलता !……।”

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा । उस सन्नाटे में आई एक धीमी-सी आवाज—“टप् !” फिर अनेकों ।

सुधीर ने कितनी बार अपने आत्मपीड़न को लेकर खिड़की से आतीं सीधी बौछारों को अपने चेहरे पर सहा है, किन्तु आज वसुन्धरा की आँखों से टपके उन आंसुओं को वह कैसे भी न सह पाया ।

उसका रोम-रोम सिहर उठा । तभी कांपते स्वर में बोली—

“अब भी नाराज हो ?”

“……।”

“बोलो !”

“नहीं !”

बहुत देर तक दोनों में से कोई भी न बोला—तब सुधीर ने धीमे स्वर में पूछा—

“क्या हुआ था वसुन्धरा ? अब मैं घर जाकर सबको अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा”

वह रुँधे कंठ से बोली—

“सुधीर बाबू ! आप पुरुष हैं । आपसे कोई कुछ नहीं कहेगा । आज कुछ कहा भी तो कल सब भूल जायेंगे । फिर आपने किया ही क्या है ? जिसने किया है सो इस समय भी कहीं चैन से सो रहा होगा ।”

“लेकिन बात क्या हुई थी ?”

तब वसुन्धरा ने संक्षेप में बताया कि कि कैसे उसके प्रोफेसर डा० मणिकान्त ने उसे सुनहले सपने दिखा-दिखाकर अपनी मोहमयी छलना में फाँस लिया था । पीछे पता चला कि उनकी शादी हो चुकी है और तब एक दिन उसने जाना कि वह कुमारी ही माँ बनने जा रही है ।

अपनी कुल मर्यादा को बचाने के लिए उसके चाचा जज साहब ने उसे काटकर जमुना में बहा देना ही एक मात्र उपाय समझा था । उस अनुष्ठान की तय्यारियाँ भी हो चुकी थीं । तभी पुरानी दासी से सारे षड्यंत्र की खबर पाकर उस तूफान में वह उसके पास लुकती छिपती भाग आई थी ।

×

×

×

×

दूसरे दिन वसुन्धरा को आनन्द के घर छोड़कर अपनी कोठी पर आया । माँ अपने कमरे में बैठी रो रही थीं । भाई गम्भीर थे । भाभी चुप थीं ।

वह चुपचाप आँगन में खड़ा था । पिताजी बाहर आये । वे उसे छत वाले कमरे में ले गये । वहाँ ले जाकर जो बताया सो जान कर कुछ देर वह स्तब्ध-सा मुँह फाड़े उनकी ओर देखता ही रह गया । उन्होंने बताया कि—“जिस कलंक को लेकर माँ ने तुम्हें जन्म दिया है वही तुम्हें आज पनप रहा है । मैं तो पहिले से ही जानता था । अब इस घर में तेरे लिए जगह नहीं है । तू मेरा लड़का नहीं है । जहाँ

मन में आये चला जा.....।” कहते-कहते वे कमरे से बाहर चले गये ।

सीढ़ियों से उतरते पिता को उसने देखा—उस ओर देखते-देखते उसे लगा जैसे जिन रहस्यों, जिस अंधकार के बीच वह आज तक जीता आया है सो सब मिट गया है—आज वह समझ रहा है उस घृणा और उत्पीड़न का अर्थ जो पिता और बड़े भाई से पाता आ रहा है ।

अब उसे लग रहा है जैसे वह एक घिनोना कीड़ा है । ऐसा बीभत्स जिसे सबसे अलग रहना है । सबसे कटकर, दूर-दूर जितना भी दूर रह सके !

सुधीर उसी रात आनन्द से कुछ रुपये उधार लेकर वसुन्धरा के साथ दिल्ली से बाहर चला गया ।

उस बात को आज लगभग दस वर्ष बीत गये । पिछले कई वर्षों से किराये का मकान लेकर घर वालों से दूर गृहस्थी बसाकर सुधीर दिल्ली में ही रह रहा है ।

आज सवेरे से रिमझिम हो रही है । वह चुपचाप खुली खिड़की के पास बैठा है । आकाश से उमड़ते घुमड़ते बादलों को देखते-देखते सोचने लगा—माँ ! जन्म से पूर्व ही कलक का यह बिष-डंक क्यों चुभाया ?

क्या इसी तरह जीवन भर उस दर्द को भोगते जाना होगा ? कंसे भी मुक्ति नहीं ? माँ ! तुमने यह क्या किया ?

सोचते-सोचते एक विमूढ़ जड़ता भरी उदासी ने उसे ग्रस लिया ।

इतने ही में पत्नी ने आकर अधिकार भरे स्वर में कहा—“सिनेमा जा रही हूँ । कविता कहानी से फुरसत मिले तो मुन्ना की सार संभाल कर लेना ।”

पत्नी का वह कर्कशस्वर उसे सब ओर से खींच लाया । खोया-खाया सा बोला—

“ऐं…… हाँ……लेकिन उसे तो आज ज्वर है शीला !”

“इसीलिए तो कह रही हूँ ।”

सुधीर ने सामने पड़े कागज कलम समेटते हुये कहा—

“अच्छा जाओ ।”

वह एक दबी उसाँस छोड़ता उठ खड़ा हुआ ।

जाते-जाते पत्नी ठिठक गई । आक्रोश भरे स्वर में बोलीं—

“क्यों जी ! ये कछुये जैसी साँसें सदा क्यों छोड़ते रहते हो ? तुमसे मेरा जरा सा भी सुख क्यों नहीं देखा जाता ?”

सुनकर क्षण भर सुधीर उसकी ओर देखता रहा । कुछ कहने के लिए उसके होंठ हिले पर बोला नहीं । सिर झुकाकर जहाँ का तहाँ बठ गया ।

शीला गुस्से में भुनभुनाती जब चली गई तो वह उठा और मुन्ना के पास आ बैठा ।

मुन्ना चुपचाप आँखें बन्द किये लेटा था । सुधीर ने उसके माथे पर धीरे से हथेली रक्खी । माथा तब्रे जैसा जल रहा था ।

एक स्निग्ध स्पर्श ! और वच्चे ने आँखें खोल दी ।

वह सुधीर की ओर एकटक देखता-देखता बोला—

“बाबूजी ! मैं मर जाऊँ तो तुम बहुत रोओगे ?”

सुनकर वह अन्दर ही अन्दर भर आया । भारी गले से बोल —

“ऐसे नहीं बोलते हैं मुन्ना !”

“तो तुम अम्मा को समझा क्यों नहीं देते ?”

“क्या समझाऊँ ?”

“अम्मा से कहना कि मुन्ना अभी बच्चा है उसे मारना नहीं चाहिए। बाबूजी ! तुम रुपये क्यों नहीं लाते ? इसीलिए तो अम्मा मुझे पीटती है ।”

“दवा खाली ?”

“अम्मा कहती है कि दवा के लिए पैसे नहीं हैं ।”

“ठीक ही तो कहती है ।”

“और सिनेमा ? बाबूजी एक रुपया चार आना लगता है टिकट का ?

“वे सिनेमा नहीं गई हैं बेटा !”

“नहीं बाबूजी ! वह सिनेमा ही गई हैं । वह आती है न अपने घर ओठों पर लाल-लाल स्याही लगाके..... ।”

“कौन ? मिसेज मेहरा ?”

हाँ,हाँ वही सबेरे आई थीं। उन्ही के साथ जायेंगी। प्यार की जीत देखेंगी बाबूजी ! तुम जानते तो हो नहीं। मैं सब जानता हूँ।”

“अच्छा.....अच्छा तुम थोड़ा सोलो।”

× × × ×

शीला सिनेमा देखकर जब लौटी तो रात के दस बज चुके थे। मुन्ना सो गया था और सुधीर कापी पर सिर भुकाये कुछ लिख रहा था।

शीला आविष्ट स्वर में बोली—“सुना तुमने ? मिस्टर मेहरा मान गये हैं। कहते थे कि सरकारी दफ्तर में कही दो सौ ढाई सौ की जगह खाली हुई है। एक तरह से जगह उन्ही के हाथ में है। सुबह ही जाकर मिल लेना।”

सुधीर ने कापी पर सिर भुकाये ही जवाब दिया—“मिस्टर मेहरा के रिश्तेदारों में क्या कोई भी बेकार नहीं है?”

शीला आनन्द के उस आन्तरिक आवेग की घनता में सुधीर के स्वर को पहिचान ही न पाई।

बटुए में बची पूंजी का हिसाब लगाते-लगाते बोली—

“हैं क्यों नहीं ? उनका सगा भतीजा ही बेकार है पर आज उन्हें मेरी बात माननी ही पड़ी। सच मिस्टर मेहरा कितने अच्छे हैं !” कहते-कहते वह किसी ध्यान में डूब गई।

ध्यान टूटा तो उसने स्वामी की ओर देखा। वे चुपचाप सिर भुकाये कापी पर लिखे जा रहे थे। जब स्वामी की ओर से बहुत देर तक कोई उत्तर नहीं मिला तो अधीर होकर बोली—

“सुना तुमने.....?”

बीच ही में लिखते-लिखते ही सुधीर ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया—

“गले में नौकरी का पट्टा बँधवाकर पूँछ हिलाना सबके वश की बात नहीं है शीला ! वह सब मुझ से नहीं हो सकेगा !”

सुनकर शीला मारे क्रोध के काँप उठी। बोली—“तो तुम्हारा मतलब है कि ये जो सरकारी हाकिम-हुक्काम हैं सो सब कुत्ते हैं ?”

“सो मैं नहीं कहता। मैं सिर्फ अपनी अपमर्त्यता की बात कह रहा हूँ।”

शीला चीखती-सी बोली—“हूँ ! काम नहीं करेंगे और रोटी घर में एक बार नहीं बने तो प्राण निकल जायेंगे।”

सुधीर ने कापी पर सिर झुकाये ही धीरे से जवाब दिया—

“ठीक है शीला, आज से मैं घर पर भोजन नहीं करूँगा।”

सुनकर लगा जैसे कहीं भूचाल आ गया है। वह कड़कते स्वर में बोली—“अच्छा ! इतना मिजाज ? तो कविजी महाराज ! आज कान खोल कर सुन लो। मैं भी अब तुम्हारी इस गृहस्थी की गाड़ी अधिक नहीं खींच सकती। मैं बाहर जाकर नौकरी करूँ और तुम घर के कौने में बैठकर कविता-कहानी लिखो। इसमें तुम्हें शर्म नहीं आती !

सुनकर सुधीर को लगा जैसे सहसा कापी पर लिखे सारे अक्षर लिपपुत कर एकाकार हो गये हैं।

उसे लग रहा था जैसे बहुत दिनों से जो फोड़ा उसके अन्दर ही अन्दर पकता आ रहा था, उसी को आज शीला ने सहसा भींच डाला है। सुनकर उसका सारा पिंजर काँप गया। वह एक गहरी उसाँस छोड़ता उठा। मुन्ता की चारपाई के पास जा खड़ा हुआ। थोड़ी देर खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा। फिर बिना कुछ कहे चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

सुधीर के पास एक कमरा नीचे की मंजिल में और एक कमरा दूसरी मंजिल में है। वह ऊपर वाले कमरे में अकेला रहता है। वहीं पढ़ता लिखता है। नीचे मुन्ना को लेकर शीला रहती है।

शीला सरकारी स्कूल में शिक्षिका है। डेढ़ सौ रुपया मासिक उसे मिल जाता है। सुधीर दो वर्ष पहिले किसी कालेज में प्रोफेसर था पर प्रिंसिपल से किसी बात पर उलझ गया सो कालेज छोड़ने पर ही सुलभ पाया।

पिछले वर्षों में सुधीर ने कई पुस्तकें लिखी है। पुस्तकों पर जो रॉयल्टी मिलती है उससे घर का खर्च नहीं चल पाता क्योंकि शीला ने अपना बचपन वैभव भरे घर में बिताया है।

इतनी कम आमदनी में भला घर का खर्च चल ही कैसे सकता है ? उसे सोसायटी में भी तो आना जाना होता है। वह सुधीर नहीं है जो घर के कोने में कापी पर सिर झुकाये दिन रात बैठी रहे !

सुधीर विगत दो वर्षों से एक पुस्तक लिखता आ रहा है। उसे आशा है कि इस पुस्तक से उसे इतना रुपया मिल जायगा कि उसकी चार पांच वर्ष की दरिद्रता मिट जायेगी। पुस्तक समाप्त हो चुकी है। आज उसीकी भूमिका लिख रहा था।

प्रकाशक से तय है कि पांडुलिपि के साथ उसे पाँच सौ रुपये पेशगी दे दिया जायगा।

पेशगी रुपये अभी उसके हाथ में नहीं आये थे किन्तु पिछले कई दिनों से जब भी लिखते-लिखते थक जाता है तो बाजार में जा पहुँचता है। शीला के लिए सैंडिल के डिजाइन देखता है। मुन्ना के लिए मदरासी रेडी मेड कपड़े पसन्द करता है। खिलौनों की दुकान पर नये-नये सस्ते खिलौनों की मन ही मन लिस्ट बनाता है।

पेशगी के रुपयों से वह वर्षों की आन्तरिक भूख मिटा लेना चाहता

था। वह कई दिनों से इन क्षणों की कल्पना कर रहा था कि जब बाजार से सारा सामान लेकर घर लौटेगा। सोचता था—वह एक दिन शीला को प्लेजेंट शॉक देगा किन्तु आज थोड़ी देर पहिले जो घट गया है उससे उसका सब कुछ टूटकर बिखर गया।

वह नीचे से आकर चुपचाप अपने कमरे में लोट गया। खुली खिड़की से निशीथ के घने अन्धकार में आँखें गढ़ा गढ़ाकर न जाने क्या खोजने लगा।

अपमान का वह विष ! धीरे-धीरे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो तीव्र से तीव्रतर हो उठा है।

उसे लगा जैसे उसका समस्त अस्तित्व ही पीड़ा की ज्वाला में घुल-मिल गया है। तभी उसके कानों में सहसा एक शब्द-हीन स्वर गूँज उठा—

“बाबूजी ! मैं मर जाऊँ तो तुम बहुत रोओगे ?”

रात मूर्तिमती करुणा है । स्यात् इसलिए रात होते ही हमारे दर्द जाग उठते हैं ।

रात के उस घने सन्नाटे और नीरव साँय-साँय में सुधीर के अन्दर ही अन्दर बार-बार कुछ उमड़ता है और वह छाती दबाकर सह लेता है । फिर एकाएक जड़ित हतसंज्ञ सा हो, तकिये में मुँह छिपा कर लेट गया ।

अन्धेरे से घिरे उस एकान्त में वह फूट पड़ा । सुधीर रो रहा था । वह रो रहा था अपने उस प्यार को—जो उसने शीला को दिया था। शीला—

जो कभी वसुन्धरा थी । जिसने कभी डा० मणिकान्त के मृत पुत्र को जन्म दिया था । जिसने उस कलंक को धोकर अपना वसुन्धरा नाम भी उतार फेंका था, जिसने 'शीला' नाम ओढ़ कर समाज में प्रवेश किया था ।

जो आज क्रोध में काँपती कह रही थी—

“तो कवि जी महाराज ! कान खोल कर सुन लो.....तुम्हें शर्म नहीं आती ?..... ये कछुए जैसी साँसें सदा क्यों छोड़ते रहते हो ?

और वह—

उसी का अंश !

वे नन्हें प्राण पुकार रहे थे—

“बाबूजी ! मैं मर जाऊँ तो तुम बहुत रोओगे ?”

तभी शीला का उनीदा कंठ-स्वर सुनाई पड़ा । उसने जाना कि रात बीत गई है और सुबह हो आया है ।

शीला द्वार पर खड़ी कह रही थी—

“आज स्कूल की छुट्टी है। मुझे पिकनिक पर जाना है।”

उसने अन्धकार में आँखें पोंछकर गला साफ किया। वे बोलीं—

“सुना नहीं ? मैं क्या रही हूँ—मुन्ना के पेट में दर्द है। अभी सो गया है। जो लिखना पढ़ना हो सो नीचे जाकर ही करना।”

उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर धीरे से कहा—

“अच्छा !”

शीला चली गई। जब वह नीचे मुन्ना के पास आया तो देखा मुन्ना जाग रहा है।

वह पास ही बैठ गया। मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! मेरे पास सो जाओ।”

सुधीर उसके पास ही लेट गया। मुन्ना ने उसके गले में अपनी पतली गर्म बांहें डालकर कहा—

“बाबूजी ! माँ तुम्हें तंग करती हैं ?”

“नहीं तो।”

“तुमने अम्मा से शादी क्यों की ?”

“बेटा ! ऐसी बातें नहीं करते हैं।”

“सबकी माँ अपने बच्चों के पास लेटती हैं। गोदी में बिठाती हैं। प्यार करती हैं लेकिन अम्मा तो.....।”

“मुन्ना ! तुम्हारे पेट में दर्द है ?”

“हाँ, थोड़ी-थोड़ी देर में होता है।”

कहते-कहते मुन्ना ने अपने बाबूजी के गले से बांहें खींच लीं। दोनों हथेलियों से पेट को धीरे से पकड़ कर हाँफने लगा।

हाँफते हाँफते बोला—

“बाबूजी ! पेट के अन्दर फोड़ा है।”

“फोड़ा ?”

हाँ, तीन चार रोज पहले ही अम्मा ने धक्का मारा था । मेज का कोना बड़ी जोर से पेट में लगा था । वही तो अन्दर ही अन्दर पक गया है ।”

सुधीर ने उठकर बिजली के प्रकाश में उसका पेट देखा । सचमुच ही पेट बाईं ओर एक जगह कुछ सूज आया था ।

देखकर सुधीर क्षुब्ध हो उठा । मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! तुम चिन्ता मत करो । मैं ठीक हो जाऊँगा ।”

× × × ×

सुबह होते-होते मुन्ना के पेट का दर्द भयंकर रूप से बढ़ गया लेकिन सुधीर क्या करे ? कई बार सोचा दौड़ कर भइया के पास जाये । वे भी तो अच्छे डाक्टर हैं—लेकिन नहीं !

जाकर भाभी को बुला लाये ? लेकिन उनके लिए भी तो भइया से ही पूछना होगा—किसी दूसरे डाक्टर के पास जाये ? लेकिन……
…… रुपये ?

इसी उधेड़बुन में दस बज गये । मुन्ना मछली की तरह बिछौने पर तड़प रहा था । सुधीर उसे इसी तरह तड़फता छोड़कर अपनी नई पुस्तक की पांडुलिपि हाथ में लिए प्रकाशक के पास दौड़ा गया ।

सुधीर को अचानक आया देख प्रकाशक अपना ऐनक एक ओर रखकर बोले—“आइये ! आइये मिस्टर सुधीर ! वह पांडुलिपि लाये ?”

“जी ! मैं जल्दी में हूँ । पेशगी रुपये दे दीजिए !”

“अजी ऐसी भी क्या जल्दी है ? भोंके से आये और तूफान से चल दिये ।”

“घर बच्चा बीमार है ।”

“तो आपको काहे की चिन्ता । भाभी संभाल लेंगी ।”

लेकिन फिर भी……

“रीयली यू लिव इन पैराडाइस ! हसबैन्ड और वाइफ—एक बच्चा, दोनों कमाने वाले, क्यों साहब ! है न यही बात ?”

“हाँ जी सो तो है ही ।”

“हाँ, अच्छा याद आया—कौन कह रहा था कि अपनी भाभी का मि० मेहरा के यहाँ काफी आना जाना रहता है । भई ! मि० मेहरा की तो ऊपर तक जान पहिचान है । उनसे कह-सुनकर एक दो अपनी किताबें भी पंजाब सरकार की लाइब्रेरी में लग जायें । क्यों जी !”

“हां—हाँ क्यों नहीं ! लेकिन अभी जल्दी में हूँ ।”

सुनकर प्रकाशक महाशय की बाँछें खिल गईं ।

बोले—“दो सौ तो अभी ले जाइये, बाकी तीन सौ कल ।”

कहते-कहते जेब से निकालकर दो सौ रुपये उसके सामने रख दिये ।

×

×

×

×

सुधीर मुन्ना को लेकर डाक्टर के पास पहुँचा । डाक्टर नये थे । एक मरीज युवती उनके सामने बैठी थी । मरीज और डाक्टर बातों में ऐसे डूबे हुए थे कि बीच में कुछ कहने सुनने की उसकी हिम्मत ही नहीं हुई । अन्त में अधीर होकर बोला—

“डाक्टर साहब बच्चे के पेट में दर्द है ।”

डाक्टर साहब अन्यमनस्क भाव से उठे । पेट को बेरहमी से टटोला । मुन्ना चीख पड़ा ।

फिर न जाने किस चीज का एक इंजेक्शन लगाया । कुछ गोलियाँ दी और शीशी में मालिश करने का तेल ।

सुधीर घर लौटा तब तक शीला लौट आई थी । इंजेक्शन के नशे में मुन्ना रास्ते में ही सो गया था । सुधीर को देखकर बोलीं—

“कहाँ गये थे ?”

“डाक्टर के पास !”

“खैराती अस्पताल !”

“हाँ, यह दवा है—एक गोली अभी-एक शाम को देना । और यह तेल ! पेट पर मालिश कर देना ।” कहकर वह चलने लगा । तभी वह बोलीं—

“क्या सचमुच तुम नोकरी नहीं करोगे ?”

“नहीं !”

सुनकर कुछ सोचती रही फिर थोड़ी मुस्कराकर बोलीं—

“सुनते हैं अम्मा के पास बैंक में कई हजार रुपये हैं । उनसे क्यों नहीं माँगते ? तुम्हारे बड़े भइया कितना-क्या माँ से लेकर खा गये । सुना है उन्हीं के रुपयों से अलग एक कोठी बनवा रहे हैं ।”

कंठ में मिठास भरकर बोली—

“बोलो, जाओगे अम्मा के पास ?”

“नहीं”

सुनकर सहसा उनका मुँह काला पड़ गया । कड़े स्वर में बोलीं—

“क्यों ? क्यों नहीं जाते ?”

सुधीर बोला—

“शीला ! सब कोई भीख नहीं माँग पाते ?”

शीला पागलों की भाँति चीख पड़ी—

“सब कोई खैराती अस्पताल में जाकर इलाज करा पाते हैं !”

सुधीर बिना कोई जवाब दिये चुपचाप उस कमरे से बाहर निकल गया ।

वह एक नई पुस्तक प्रारम्भ करना चाहता है—“मनुष्य और पूँजी” उसके लिए सेन्ट्रल लाइब्रेरी जाकर रिफ्रेन्सबुक्स की लिस्ट बनानी थी ।

घर से निकलते समय उसने चाहा कि शीला को रात के समय देर

से आने की बात बताता जाये पर यही सोचकर रुक गया कि वे अभी भरी हुई हैं—कहीं बात अधिक न बढ़ जाये।

वह बिना कुछ कहे घर से बाहर चला गया।

जब रात को दस बजे लौटा तो सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते उस आसन्न वाक् युद्ध से बचने के लिए मन ही मन मोर्चे बन्दी करने लगा। जब शीला के कमरे में पहुँचा तो देखा कि युद्ध के बादल छँट गये हैं।

शीला आनन्द में सो रही है। पास की चारपाई पर मुन्ना लेटा है। उसने बिजली के प्रकाश में देखा—मुन्ना का मुँह लाल हो उठा है। आँखों के नीचे गाल पर आँसू चमक रहे हैं।

उसके गले में बार-बार एक खरखराहट-सी हो उठती है।

मुन्ना जग न जाय इसलिए घुटनों के बल फर्श पर ही बह बैठ गया। धीरे से मुन्ना के माथे पर हथेली रखी।

मुन्ना ने धीरे से आँखें खोली। छूटते ही बोला—

“तुम कहाँ चले गये थे बाबूजी !”

“क्यों बेटा! क्या हुआ ?”

“अम्मा डाँटती हैं। कहती हैं—आये दिन बीमार पड़ जाता है।”

“हाँ ! बीमार होना अच्छी बात नहीं है।”

“तो धक्के क्यों मारती है ? क्यों खिलाती है ! तन्दूर की रोटी ? इसीलिए तो बीमार पड़ता हूँ।

अपनी पड़ौसिन काकी से पूछ लो।”

“दवा खाई थी ?”

“नहीं।”

“और मालिश……..!”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“अम्मा ने दी ही नहीं ।”

सुधीर को लगा जैसे वर्षों से सोता कोई ज्वालामुखी सहसा उसके अन्दर धधक उठा है । वह जोर से चीख पड़ा—

“शीला S S S !”

“क्या है ? क्यों दहाड़ रहे हो ?”

“इसे दवा क्यों नहीं दी ?”

“मिस्टर और मिसेज मेहरा आये थे । याद ही नहीं रहा । दे दो, मेज पर पड़ी है ।”

सुनकर मारे क्रोध के सुधीर का रोम-रोम काँप गया पर किसी तरह अपने को दवा गया फिर भी उसके मुँह से निकल ही गया—

“तुम माँ हो ?”

वह सोते-सोते बोली—

“नहीं डायन हूँ !”

सुनकर सुधीर जहाँ का तहाँ चुप बैठा रहा । थोड़ी ही देर में उसके कानों ने सुना—

शीला खुरटें ले रही थी ।

मुन्ना ने दोनों वहाँ उठाई । सुधीर की गर्दन में डालकर उसे भुका लिया । धीरे से बोला—

“बाबूजी ! मुझे डर लगता है । अपने पास ऊपर के कमरे में ले चलो ।”

“डर की क्या बात है मुन्ना !”

मुन्ना ने उसे अपनी ओर खींचा । कान के पास मुँह ले जाकर गर्म उसाँसे छोड़ता बोला—

“बाबूजी ! अम्माँ डायन है !! मुझे मार डालेंगी—म अब यहाँ नहीं सोऊँगा ।”

सुधीर उसे उठाकर ऊपर के कमरे में ले गया ।

डाक्टर ने सुबह जो इंजेक्शन लगाया था उसी के कारण अब तक उसका दर्द रुका था । जैसे-जैसे इंजेक्शन का असर कम होता गया, दर्द बढ़ता गया ।

रात के बारह बजते-बजते उसके पेट का दर्द भयंकर रूप से बढ़ गया । वह सुबह की तरह ही फिर तड़फने लगा ।

सुधीर घबरा गया । मुन्ना को उठाकर एक दूसरे डाक्टर के पास ले गया । वे मिलिट्री के रिटायर्ड डाक्टर थे । मकान के नीचे उनकी प्राइवेट डिस्पेंसरी थी । ऊपर की मंजिल में वे स्वयं रहते थे ।

कई आवाजें लगाने पर डाक्टर साहब अपना ऐनक सँभालते नीचे आये । उनींदे धीमें स्वर में बोले—

“क्या बात है भाई ?”

“बच्चे के पेट में दर्द है ।”

“अच्छा अन्दर ले आइये ।” कहकर उन्होंने डिस्पेंसरी का कमरा खोला । बिजली जलाई ।

डाक्टर ने कई यन्त्रों से मुन्ना की परीक्षा की । उनका चेहरा गम्भीर हो गया । बोले—

“आप तो एजूकेटेड मालूम पड़ते हैं । अभी तक क्या करते रहे ? केस इज वेरी सीरियस !”

सुनकर सुधीर के प्राण सूख गये । घबराता बोला—“ह्वाट्स द मीटर डाक्टर ?”

“बच्चे के पेट में चोट लगी है । चोट अन्तर्द्वियों तक पहुँच गई है । और अब सैण्टिक हो चुका है ।”

“सैण्टिक ! लेकिन मैंने तो सबह ही एक डाक्टर को दिखाया था ।”

डाक्टर फुर्ती से स्टोव जलाकर इंजेक्शन देने की तैयारी करने लगा ।

चीखने-चीखते मुन्ना का गला पड़ गया था । अब उससे चीखा नहीं जा रहा था । सहसा अचेत-सा होकर चुप हो गया ।

सुधीर चीख पड़ा—“डाक्टर ! डाक्टर !”

डाक्टर ने शान्त स्वर में कहा—“आप घबरायें नहीं ! उसे बेहोशी आ गई है ।”

थोड़ी देर कमरे में सन्नाटा रहा । तब तक इंजेक्शन तय्यार हो गया था । डाक्टर ने इंजेक्शन दिया ।

डाक्टर बोला—“आपने सुबह किस डाक्टर को इसे दिखाया था ?”

“डाक्टर खन्ना को । इसी सड़क के अन्त में चौराहे पर जिनकी डिस्पेंसरी है ।”

“ओह ! आप भी कहाँ जा फँसे । उसे लड़कियों से ही कहां फुरसत है । फ्लर्टेशन करता है । कजूस बाप की पूंजी है । बर्बाद जो करनी है ।”

कह कर वे चुप हो गये । फिर पेट पर ऊपर से बाँधने का कोई प्लास्टर तय्यार करते-करते बोले—“और यह सरकारें भी कैसी अंधी होती हैं । कैसे अन्धे होते हैं इनके कानून ! ये नौसिखिये डाक्टर किसी की जान भी ले लें तो कोई चूँ नहीं करता ।” कह कर वे चुप हो गये ।

फिर बोले—

“देखिये आधे-आधे घंटे बाद इंजेक्शन देने होंगे । बच्चे को यहीं रखना होगा—दूसरे कमरे में ठहरने का इन्तजाम है ।—आप क्या काम करते हैं ?”

“लिखना...पढ़ना”

“अच्छा...अच्छा.....रायटर है ! लेकिन खर्च बहुत पड़ेगा ।”

“खर्च मैं कर लूँगा । डाक्टर ! बस आप इसे बचा लीजिये ।”

“अच्छा हुआ जो अभी इसे यहाँ ले आये नहीं तो सुबह मिलना कठिन हो जाता। सैण्टिक केस कुछ होता ही ऐसा है।”

सुनकर सुधीर का मुँह सफेद पड़ गया।

डाक्टर उसका चेहरा देखकर बोला—“आप घबराइये नहीं। मेरे पास असली इंजेक्शन है नहीं तो आजकल विदेशी कम्पनियों के लेविल लगा-लगा कर मार्केट में सब नकली माल बिक रहा है। मैं सीधा कम्पनी से ही मगाता हूँ। हाँ, दवा मैं नहीं दूँगा। उसका भरोसा नहीं है।”

×

×

×

सुबह होते-होते मुन्ना गहरी नीद में सो गया था। जब मुन्ना के कपड़े लेने सुबह घर लौटा तो शीला नल के पास खड़ी ब्रश कर रही थी। एक ओर शूक कर बोली—

“मुन्ना की कैसी तबियत है?”

“ठीक है?”

“ऊपर कमरे में कब उठा ले गये थे? हाँ, सुनो! कल कहना में भूल गई थी। आज एक पार्टी के साथ अभी सात की गाड़ी से आगरा जा रही हूँ।”

“अच्छा”

“पार्टी तो दो दिन में लौट आयेगी पर हम कुछ लोग बम्बई जाकर आठ-दस दिन में लौटेंगे।”

“अच्छा!” कह कर वह ऊपर के कमरे में गया। कुछ आवश्यक सामान लेकर डिस्पैन्सरी लौट आया।

उसी दिन जब दोपहर को घर लौटा तो पड़ोसिन काकी हाथ में चाबियों का गुच्छा थमा कर बोली—

“कहाँ चले गए थे बेटा! बहू गुस्से में चली गई। उसे मुन्ने से मिलना था। क्या अस्पताल ले गए थे?”

“हाँ काकी !”

“अब कैसी तबियत है ?”

“ठीक है ।”

‘कुछ काम काज क्यों नहीं करते भइया ! बहू बेचारी इस तरह कब तक दुख उठायेगी ।’

“हाँ, काकी, अब सब ठीक हो जायेगा ।”

×

×

×

पिछले सात दिन से मुन्ना नर्सिंग होम में है । उसका सारा शरीर इंजेक्शन से छलनी हो गया है लेकिन अब संकट टल गया है ।

उस दिन जब डाक्टर इंजेक्शन देने आया तो मुन्ना जोर-जोर से रोने लगा । डाक्टर जैसे-तैसे इंजेक्शन देकर जब चला गया तो सुधीर बोला—

“मुन्ना ! तुम तो मेरे बहादुर बेटे हो ! रोते क्यों हो ?”

“बाबूजी ! तुम जानते नहीं । बड़ा दर्द होता है ।”

“कितना दर्द होता है बेटा !”

“कितना—समझ लो..... बिरला मंदिर की नोक टूट कर आसमान में उड़ जाए और फिर इस छत को तोड़कर किसी के सिर में चुभ जाए । इतना दर्द होता है बाबूजी !”

“दर्द की उस विपुलता के विपुल उपमान को सनकर सुधीर न जाने क्या सोचता अन्दर ही अन्दर भर आया । फिर बहुत देर तक मुन्ना को छाती से चिपटाये बैठा रहा । जब सो गया तो धीरे से उसे बिछौने पर लिटा दिया ।

वासना !

पगले ! तू कहता है—“प्यार है निर्लज्ज वामना !

ऐसो भूख—जो कभी मिटती नहीं !

ऐसी प्यास—जो कभा बुझती नहीं !”

अरे !

प्यार निर्लज्ज वासना नहीं—आत्मा की शाश्वत पुकार है !

—आदि पुकार !

—अनन्त पुकार !!

सुधीर ने प्यार चाहा था । उसने ऐसी मूर्ति की कामना की थी जिसे वह मन ही मन पूज पाता । जिसके सुख-दुख ओढ़कर तृप्ति की सांस लेता, जिसे अपने दुःख-दर्द देकर हल्का हो पाता, जिसके साथ वह जिन्दगी की लड़ाई लड़ पाता किन्तु सुधीर ने जो मूर्ति पाई है, उस पर सुधीर के मन की विराटता ओछापन बनकर छा गई है । उसके लिए आज मूर्ति का आकार है पर आत्मा खो गई है ।

आज उसका मन बहुत उदास है । वह खिड़की के पास बैठा आकाश की ओर देखता न जाने क्या-क्या सोचे जा रहा है ।

पूर्व में अंधकार घुलता जा रहा है । तभी हवा की साँय-साँय के साथ उसने सुनी किसी पक्षी की पागल पुकार ! उसे लगा जैसे अन्दर ही अन्दर कोई धीमे से पूछ रहा है—

“बोल ! तूने जाना है कभी ऐसा प्यार ?”

धीरे-धीरे आकाश में बिखर गई—एक दिव्य दीप्ति ! सुनहली लालिमा !!

सहसा उसके अन्तर में गूँज उठा एक शब्दहीन तीखा स्वर—

“पगले ! प्यार है निर्लज्ज वासना !

ऐसी भूख—जो कभी मिटती नहीं !

ऐसी प्यास—जो कभी बुझती नहीं !!

प्यार—अज्ञान है ! अन्धकार है !!

उसे चाहिए—

प्रकाश !

मुक्ति का प्रकाश !!

मुनहला-दैदीप्यमान ! अमर ! अमोघ !!

अरे ओ मुधीर ! तुझे कौन समभाये कि जिसे तू 'मुक्ति' और 'प्रकाश' के नाम से पुकार कर गौरवान्वित हो रहा है, सो वही है तेरे नैराश्य की घोर अंधियारी—

प्यार निर्लज्ज वासना नहीं—आत्मा की शाश्वत पुकार है !

—आदि पुकार !

—अनन्त पुकार !!

यही है राधा का युग-युग व्यापी विरह !

यही है प्रेमदिदानी मीरा का करुण-क्रन्दन !!

यही है महाकवि कालिदास का महाकाव्य !

यही है आचार्य भवभूति की मूर्तिमती करुणा !

सहमा उसे उत्तर रामचरित का एक पद याद हो आया—

× चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः

उक्त पद को गुनगुनाते गुनगुनाते वह अन्दर ही अन्दर भर आया । साथ ही याद आया शीला का वह रूप—

जब वह वसुन्धरा थी—पार्टी में आकर गीत गाया था—एक ही दृष्टि में वह अपने को खो बैठा था—काली तूफानी रात में वह अपने घर से भाग कर आई थी—मित्र के घर उसे ले गया था—वह सो गया था—वह उस पर झुक आई थी—मृत बालक जन्मा था—वर्षों साथ-साथ रहकर भी दूर रहे थे और फिर मंसूरी की रात—

उजेली रात और मंसूरी की बह उन्माद भरी हवा—दोनों एक पहाड़ी पर बैठे थे । वसुन्धरा ने उसकी दोनों हथेलियाँ अपनी जलती आँखों पर रखकर आविष्ट स्वर में कहा था—

× प्रिय का सदा ध्यान करते-करते प्रिय की मूर्ति ही मानो आँखों के सामने आ जाती है ।

“सुधीर ! मैंने एक दिन तुम्हें चाय पर बुलाया था फिर
..... फिर याद आते ही मैं लाज और ग्लानि के मारे मर-मर जाती
हूँ । मैं किसी भी तरह उस बात को भूल नहीं पाती ।”

वह चुप रहा था । थोड़ी देर सन्नाटा रहा था । वसुन्धरा उसकी
गोद में झुक आई थी फिर चाँदनी के उजाले में सुधीर के चेहरे की
ओर टकटकी लगाये बोली थी—

“हाय राम ! कितना—क्या कुछ है तुम्हारी इन आँखों में—
सच, आज तक मैं तुम्हें पहिचान ही न पाई । बोलो, इतने दिनों
तक अपने को छिपाकर क्यों सताते रहे हो मुझे ? बोलो—बोलो—

मारे आवेग के दोनों बाहें उठाकर उसके गले से लिपट गई थी और
सुधीर अन्दर ही अन्दर काँप उठा था ।

वसुन्धरा हिचक-हिचक कर रोई थी । रोते-रोते गीले स्वर में
बोली थी—“तुम मेरे अपराध भूलकर एक बार अपना लो नहीं तो सच
कहती हूँ मैं अब जी नहीं पाऊँगी ।”

सुनकर सुधीर का कंपन बढ़ गया था । उसे याद आया—

अपना वह स्पन्दित आवेश भरा स्वीकार !

और फिर—

समर्पण के वे धधकते क्षण !

साक्षी थे—

अंतरिक्ष के अगणित तारे—मौन मसूरी की वे सूक्ष्म पहाड़ियाँ—
आकाश में जहाँ तहाँ भटकते श्वेत धन—खंड !

तब बहुत देर तक दोनों रहे थे—

शब्दहीन ! स्वरहीन !!

स्निग्ध गरमाई की गोद में—समर्पित ! अवश ! विस्मृत !!

उस सन्नाटे में भरिये गीले स्वर में वसुन्धरा बुड़बुड़ाई थी—

“सुधीर ! आज मैं शाप-मुक्त हो गई !!”

× × × ×

उसे याद आया—

वह वसुन्धरा से शीला बन चुकी थी—वह शिक्षिका थी—उसके स्कूल में जल्सा था। जल्से की तैयारी में दो तीन दिन तक सुधीर से नहीं मिल सकी थी।

जल्सा समाप्त हुआ था। वह रात के ग्यारह बजे लौटी थी। सुधीर ऊपर वाले कमरे में लेटा था। स्विच की खट् और कमरा प्रकाश से जगमगा उठा था। वह पास आ बैठी थी—थोड़ी देर चुप रही थी।

फिर आर्द्र कण्ठ से बोली थी—

“नाराज हो ?”

“नहीं !”

“फिर ऐसे क्यों हो रहे हो ?”

“बुखार आ रहा है दो दिन से।”

“बुखार !”

“हाँ, इसीलिए—।”

सुनकर उसने अपना ठंडा हाथ उसके माथे पर रक्खा था। उसके काँपते हाथ का वह सुखद स्पर्श आज तक नहीं भूला है।

रुआँसी होकर वह सुधीर के ऊपर झुक आई थी। रोते-रोते कहा था—

“तुम मुझे रोकते क्यों नहीं ? डाँटते क्यों नहीं ? क्यों महते हो सब चुपचाप ?” फिर कुछ देर उससे चिपटी रोती रही थी।

शान्त होकर आँसू पोछनी बोली थी—

“सुनो ! स्कूल की नौकरी छोड़ दूँ ?”

“नहीं, शीला !”

“फिर क्या करूँ ? तुम्हारा कुछ भी तो नहीं देख पाती—भला

ऐसे कब तक चलेगा ? तुम घर में बीमार पड़े रहे और मैं जल्से की खुशियाँ मनाती रही । नहीं, मुझ से यह सब नहीं देखा जायगा—नहीं, कभी नहीं ।”

“लेकिन शीला ! मुझे तो लगता है कि नौकरी मुझे ही छोड़नी पड़ेगी ।”

“क्यों ?”

“सब चाहते हैं खुशामद—चाटुकारी और वह सबकुछ मुझसे नहीं होता ।”

“फिर.....फिर क्या करोगे ?”

“मैं लिखना चाहता हूँ ।”

“उससे क्या होगा ? मैंने तो सब लेखक, कवि भूखे मरते ही देखे हैं । नहीं, मैं तुम्हें लेखक नहीं बनने दूँगी—सच, तुम प्रोफेसरी मत छोड़ना ।”

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा था ।

सुधीर ने क्षुब्ध स्वर में कहा था—

“शीला ! यही हम दोनों अलग हैं । तुम वर्तमान में जीना चाहती हो और मैं भविष्य के लिए अपने वर्तमान को मिटा डालना चाहता हूँ ।”

शीला ने सहसा उसके गले में बाहें डालकर कहा था—

“सच, जब तुम ऐसी बातें करते हो तो न जाने क्यों मैं डर जाती हूँ । देखो, तुम समझते क्यों नहीं ? जो आ रहा है सो उसे क्या सदा सिर झुकाकर यही कहना होगा कि—‘उसके माँ-बाप गरीब थे ।’ नहीं ऐसा मैं कभी नहीं होने दूँगी” कहकर वह चुप रही थी । फिर और निकट होकर अस्पष्ट स्वर में बोली थी—

“आजकल मैं रात-रात भर यही सोचती रहती हूँ कि जब वह इस

धरती पर आयेगा तो मैं उसके लिए क्या नहीं करूँगी”

× × ×

सोचते-सोचते सुधीर ने अपने निकट लेटे मुन्ना के पीले मुँह की ओर देखा। अपना ही बच्चा मरते-मरते बचा है और माँ पार्टी के साथ यात्रा में व्यस्त है। उसकी कमीज में बटन नहीं है, पेंट कई जगह से फट गया है! जो उसके लिए न जाने क्या-क्या करने के रात-रातभर सपने देखा करती थी, सो आज उसे हो क्या गया है? क्यों बन गई है इतनी निष्ठुर?

सुधीर के मन में बहुत दिनों से जो धारा शीला के विरोध में बहती आ रही है सो वही न जाने क्यों मुड़ कर आज उल्टी बहने लगी है। सोचने लगा—

वह वैभव में पली है। कभी घर के काम-काज में हाथ नहीं लगाया। उसके जरा से संकेत पर दास दासी दौड़े आते थे। सो, उसी ने घर छोड़कर उसके साथ कितने क्लेश उठाये हैं। आज घर-बाजार, स्कूल सब उसी को तो सँभालना पड़ता है। सोचते-सोचते शीला के लिए उसके मन में ऐसी ममता उमड़ो कि आँखें भर आईं—

तभी सीढियों पर किसी की पद-ध्वनि सुनाई पड़ी। थोड़ी ही देर में पर्दा हटाकर शीला सामने आ खड़ी हुई। वह बम्बई से लौटी थी।

सुधीर ने स्वागत भरे गीले स्वर में धीरे से कहा—

“आओ शीला!”

शीला मुन्ना के पास आ बैठी। उसके माथे पर हाथ रख कर बोली—

“बड़ा कमजोर हो गया।”

“बीमारी बहुत बढ़ गई थी।”

“अच्छा” कहकर चुप हो गई।

बीमारी बढ़ जाने की खबर पाकर भी उसने उस सम्बन्ध में आगे एक शब्द भी नहीं पूछा। वस, लगी मिस्टर मेहरा के गुण गाने—

—कि कैसे आगरे दो दिन ठहरने के बाद वह मिस्टर और मिसेज मेहरा के साथ बम्बई गई—कहाँ कैसे ठहरे—क्या-क्या देखा—मिस्टर मेहरा का हँसना उनके विनोद-व्यंग्य-रुचि-स्वभाव आदि-आदि—

सुधीर के मन में थोड़ी ही देर पहले शीला के लिए जो धारा उमड़ आई थी, सो पुनः उसी ओर बहने लगी जिस ओर सालों से बहती आ रही है ।

शीला न जाने क्या-क्या कहे जा रही थी । जब सब ओर से विचकर वह अपने में लौटा तो उसके कानों ने सुना—

“रीयली ही इज फुल ऑफ लाइफ गुस्सा तो उन्हें कभी आता ही नहीं अच्छा, अब जाती हूँ बहुत थक गई हूँ सोऊँगी” कहते-कहते शीला बाहर चली गई ।

बोलो भगवान् ! क्या इसीलिए रची थी तूने अपनी इस सृष्टि को—

जहाँ कभी भी चैन नहीं—विराम नहीं —रस-रस, बूंद-बूंद दर्द भरे चलो-अवश ! निरीह !!

बोलो भगवान् !

क्यों कामना की इस रुनभुन में सदा भर देते हो, निर्मम पीड़ा का यह निःशब्द हाहाकार ?

सुधीर दुःख भोग सकता है । सब कुछ अकेले सह सकता है । सहने का उसे अभ्यास है किन्तु उस अवोध मुन्ना का क्लेश उससे नहीं देखा जाता ।

संसार की माताएं अपने काम में उलभी रहती हैं पर उनकी वृत्ति सदा उस चिड़िया की-सी हो ती है जो दाना चुगा की खोज में दूर उड़ जाती है और प्राण सदा घोंसले में बैठे बच्चों के चारों ओर ही मँडराते रहते हैं ।



सोचने लगा—

एक माँ इस मुन्ने ने भी पाई है ! निश्चय किया—

अब वह दिन रात लिखेगा । मुन्ना को किसी अच्छे होस्टल में भेज देगा ।

× × × ×

सुधीर सब कुछ भूलकर अब लिखने में डूब गया है । मुन्ना जब भी उसके कमरे से आता है तो सदा अपने बाबूजी से यही कहते सुनता है कि—

“बाहर जाओ, ! देखते नहीं मैं लिख रहा हूँ ।”

सुनकर मुन्ना रुआसा होकर लौट जाता है ।

एक दिन तीसरे पहर सुधीर स्नान करने नीचे की भंजिल में आया तब देखा—रसोई घर के सामने अकेला बैठा मुन्ना खाना खा रहा है ! खाना क्या ? कटोरदान में तीन-चार रूखी रोटियाँ पड़ी थी, उन्हीं को बिनासाग दाल के चबा रहा था । जब गले में अटकती तो पानी के सहारे निगल लेता था ।

देखकर सुधीर अन्दर ही अन्दर भर आया पर बोला नहीं । चुपचाप स्नानागार में चला गया ।

लौटकर बिछौने पर चुपचाप लेट गया ।

थोड़ी ही देर पहिले मुन्ना को जिस तरह रोटियाँ चबाते देख आया है सो कैसे भी नहीं भुला पाता ।

तभी मुन्ना कमरे में आया । द्वार पर खड़ा होकर बोला—

“बाबूजी ! मैं अन्दर आ जाऊँ ?”

“हाँ, आ जाओ बेटा !”

वह आकर चुपचाप बैठ गया ।

बोला—“बाबूजी किताब लिख ली ?”

“हाँ, बेटा !”

“अब तो नहीं लिखोगे बाबूजी ? तुम किताब रात को लिखा करो ।”

“और दिन में तुम्हारे साथ खेला करूँ । क्यों ?”

सुनकर मुन्ना मीठा-मीठा मुस्काने लगा । कुछ सोचकर धीरे धीरे आज के अपने नए आविष्कार की बात सुनाने लगा कि कैसे सूखी रोटी पानी में भिगोकर खाने से गले में नहीं अटकती !

मुन्ना के उस नए आविष्कार को सुनकर सुधीर मन ही मन बुड़-बुड़ाया—

“बस दो चार दिन की बात है !”

×

×

×

×

पिछले दिन से वह दिन रात लिखे जा रहा है । अब भोजन करने भी नहीं जाता । होटल दूर है और उसके पास समय नहीं है । पास ही जाकर दो-चार बार चाय काफी पी आता है । बारबार चाय काफी पीने से उसकी भूख बिलकुल जाती रही है और साथ ही सबसे बड़ा लाभ यह है कि नींद बिलकुल नहीं आती । उसपर लिखने का नशा छा गया है ।

तीसरे दिन साँझ होते-होते उसकी नई पुस्तक समाप्त हो गई और तब उसे मुन्ना का ध्यान आया ।

कमरे से बाहर आया । इधर उधर सड़क पर भाँककर देखा पर मुन्ना कहीं भी दिखाई नहीं दिया । पास की गली में कुछ बच्चों की रोने चीखने की आवाज सुनायी दी । उसने गर्दन बढ़ाकर गली में देखा—

मुन्ना और पास के बकील साहब का लड़का एक दूसरे से गुँथ गये हैं । उस लड़के की छोटी-छोटी बहिनें पास ही खड़ी रो रही हैं । सुधीर ने कई बार मुन्ना को पुकारा पर सुने कौन ?

सुधीर दौड़ा-दौड़ा नीचे गया । दोनों बच्चों को बड़ा कठिनाई से अलग किया । न जाने कितनी देर से वे इसी तरह मल्ल-युद्ध कर रहे थे । अब दोनों एक दूसरे को घूरते जोर-जोर से हाँफते खड़े थे ।

सहसा अपने गाल का खून पोंछता मुन्ना बोला—

“कहता है तेरे बाबूजी गरीब है । दलिली है ! आपही बताइये बाबूजी ! ‘दलिली’ गाली नहीं है ?”

सुधीर ने उस कानूनी तर्क पर अपना कोई मन्तव्य प्रगट नहीं किया । तभी दूसरा बालक अपनी फटी कमीज सँभालता बोला—

“तो तू क्यों कहता है कि बकील झूठे होते हैं ! मुन्ना उफनता बोला—”हाँ होते हैं झूठे ! एक बार नहीं हजार बार ! सौ बार !! हमारे बाबूजी से पूछ लो ।”

सुधीर मुन्ना के चेहरे से जहाँ-तहाँ बहते खून को देख-देखकर सोच रहा था—उसने अपने लाड़ले को बनाना चाहा था—

टेंगोर !

रोमारोल्याँ !!

और वह बन रहा है—

गली का आवारा कुत्ता !

जो —

कभी दूसरों को नोंचता है !

कभी खुद लोहलुहान होकर उफन उठता है !

गुराँता है !!

सुधीर खिड़की के पास बैठा मुन्ना और पत्नी को लेकर न जाने क्या-क्या सोचे जा रहा था तभी सहसा उसे याद आया वह पत्र जो आज सबरे की डाक से मिला है । पत्र स्विटजरलैण्ड में लिखा गया है । कोई युवती उसका उपन्यास पढ़कर अति प्रभावित हुई है और भावावेश

में ही ऐसी बातें लिख गई हैं जो किसी अपरिचित को नहीं लिखनी चाहिए थी।

जानता है कि वह मात्र भावावेश में लिखा गया है किन्तु अपने इन सन्ताप के क्षणों में उस पत्र को वह कई बार पढ़ गया। लगा जैसे पत्र पढ़ते-पढ़ते उसके अन्दर ही अन्दर न जाने कौसी धारायें बह उठती हैं। जलन मिट जाती है और एक प्रकार के अलौकिक सुख से रह-रहकर सिहर उठता है !

सोचने लगा — कौन है यह आत्मा जो मेरे चारों ओर छाये इस निविड़-अंधकार में आज अनजाने रह-रहकर आलोकित हो उठती है ? क्यों उसे लेकर अन्दर ही अन्दर एक मीठी-कामना सी जागती है ?

तभी कामना के उस धुँधले आलोक को तर्क की बदली ने ढक लिया। ध्यान आया—

अरे पगले ! वह है किसी कुमारी के मन की एक लहर ! मीठा उन्माद ! और कुछ नहीं !!

सुधीर ने एक दबी उसाँस छोड़ी और साथ ही उसके कानों में एक स्वर-हीन शब्द गूँज उठा—

“मरीचिका !”

आज के युग में हम एकान्त सुख चाहते हैं। यदि सम्भव हो तो दूसरों का सुख छीनकर भी ! हम सदा अकेले ही सुख भोगने की कामना करते हैं किन्तु समर्पण का गौरव समझ ही नहीं पाते !

शीला भी ऐसे ही युग की उपज है। उसने प्रो० मणिकान्त से सुख चाहा था—मिल भी गया था। जब अचानक वह सुख छिन गया तो सुधीर के द्वारे जा पहुँची।

आज उसे लगता है कि सुख-वैभव की लाटरी जीतने के लिए मि० मेहरा ही ऐसे घोड़े हैं जिनके लिए आँखें भूँदकर वह अपना सब कुछ दाव पर लगा सकती हैं।

उस दिन गुस्से में सुधीर ने कह दिया था कि वह घर पर खाना नहीं खायेगा। सुनकर शीला ने अन्दर ही अन्दर संतोष की साँस ली थी।

तब से वह होटल में ही खारहा है। जब उस दिन कटोरदान में पड़ी सूखी रोटियाँ चबाते मुन्ना को देखा तो उसे भी होटल ही में खिलाने का निश्चय किया था पर दो ही दिन होटल में खिलाकर वह समझ गया कि घर की सूखी रोटियाँ होटल की चुपड़ी रोटियों से अधिक स्वास्थ्यकर है। अब मुन्ना को होटल नहीं ले जाता।

जब में पैसे होते है तो वह अकेला जाकर होटल में खा आता है और नहीं होते तो अपने कमरे में अकेला भूखा पड़ा रहता है।

सुधीर जीवन की दौड़ में टूट गया है इसलिए अब यदि उसके आगे दाना-चारा नहीं पड़ता तो आश्चर्य की बात नहीं है।

पर आज के युग का इतना बड़ा सत्य उस मुन्ना को कौन समझाये ? वह अभाग किसी तरह समझ ही नहीं पाता कि क्यों उसके बाबूजी ऊपर के कमरे में भूखे पड़े रहने हैं और क्यों आये दिन नीचे के कमरे में मि० मेहरा को पार्टी पर पार्टी दी जाती है ?

इस बात को लेकर वह मन ही मन कुड़ता है । मन के उस बोझ से हल्का होने के लिए शैतानियां करता है । अन्त में होती है शीला द्वारा डाँट-फटकार ! मार-पीट !!

अभी उस दिन पेट में चोट खाकर मरते-मरते बचा है । कितने दिन अस्पताल में रहा है, पर हारकर बैठना तो उसने सीखा ही नहीं ।

वर्षा के दिन थे । सुबह से रिमझिम हो रही थी । उस रोज कोई सरकारी छुट्टी थी । शीला ने मिस्टर और मिसेज मेहरा को भोजन पर बुलाया था । साथ में आया था उनका बच्चा नरेश !

नरेश मुन्ना से छः सात महीने बड़ा होगा । पति-पत्नी दोनों अन्दर कमरे में बैठे शीला से बातें कर रहे थे । नीचे सीढियों पर मुन्ना और नरेश बैठे कुछ खेल रहे थे ।

खेलते-खेलते मुन्ना बोला—

“अच्छा, बता दुनियाँ में सबसे बड़ा कौन है ?”

नरेश चिल्लाकर विज्रत! के अभिमान में बोला—“रामजी !”

मुन्ना अधिकार के स्वर में बोला—“नहीं, हमारे बाबूजी !”

“नही, हमारे पापा । हमारे पापा आफीसर है ।”

“मेरे बाबूजी लेखक हैं ।”

“हमारे पास मोटर गाड़ी है ।”

“हमारे बाबूजी का बहुत नाम है ।”

“नाम से क्या होता है ?”

“और मोटर गाड़ी से क्या होता है ?”

तब नरेश ने नया तीर छोड़ा—

“हमारे पापा अमीर हैं ।”

मुन्ना को लगा जैसे उसने लड़ाई जीत ली है । उल्लास भरे स्वर में बोला—

“अमीर, भूठे चोर बईमान होते हैं”

नरेश ने मोर्चे बन्दी की—

“कौन कहता है ?”

“मेरे बाबूजी कहते हैं ।”

“तुम्हारे बाबूजी भूठे हैं !”

मुन्ना क्रोध में कांप उठा । बोला— “क्या s s s !”

“हाँ, तुम्हारे बाबूजी भूठे हैं ।”

मुन्ना अपने बाबूजी को मन ही मन पूजता है । उसके बाबूजी के पास कभी-कभी शहर के परिचित लेखक आजाते हैं । साहित्य-राजनीति धर्म अमीरी-गरीबी सभी विषयों पर चर्चा होती है । उन चर्चाओं में उनके बाबूजी का जो पक्ष होता है, उसी को मुन्ना परम सत्य मान कर चलता है ।

मुन्ना ने इतनी छोटी अवस्था में अपने बाबूजी के साथ रहकर जितना-जैसा धरती-आकाश-घाताल का परिज्ञान संचित कर लिया है, उस पर सहज ही किसी को विश्वास नहीं होता ।

जो अपने बाबूजी को भगवान् से भी बड़ा मानता है । ऐसे अपने महान् बाबूजी को ‘भूठ’ कहकर पुकारने वाले को भला वह माफ कैसे कर सकता था ।

खैर यह हुई कि दोनों बच्चे नीचे की सीढ़ी पर ही बैठे थे । नही तो अपने-अपने पापा और बाबू जी को लेकर जैसा बाली-मुग्रीव का भीषण मल्ल युद्ध छिड़ा उसमें कोई भी योद्धा ऊपर की सीढ़ी से गिर कर सदा-सदा के लिए अपने हाथ पैर तोड़ लेता ।

कमरे में मेहरा दम्पति और शीला बातों में व्यस्त थे । अचानक उस

मारपीट और चीख-पुकार को सुनकर शीला तथा मिसेज मेहरा दीड़ीं-दीड़ीं सीढ़ियों के पास पहुँची ।

मुन्ना नरेश की छाती पर बैठा मुक्का ताने कह रहा था —

“अब बोल ! मेरे बाबूजी झूठे हैं ? बोल ! फिर कहेगा ?”

देखकर मारे गुस्से के मिसेज मेहरा का मुँह लाल हो गया पर बोली नहीं ।

शीला ने दौड़कर मुन्ना के मुँह पर जोर से एक चाँटा जड़ दिया । मुन्ना रोया नहीं । खड़ा-खड़ा तबतक अपनी माँ को धूरता रहा जब तक वे वहाँ से चली नहीं गई ।

मुन्ना कुछ देर जहाँ का तहाँ खड़ा चोट खाये सँपोले की तरह फुंकारता रहा फिर तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ता ऊपर आया ।

जिस कमरे में वे लोग बैठे थे उसीके द्वार पर जम कर खड़ा हो गया । कुछ देर खड़ा सबको धूरता रहा फिर लम्बी लम्बी साँसें छोड़ता बोला—

“हाँ, सुनलो ! मैं किसी से नहीं डरता । तुम अमीर हो—तुम चोर बर्इमान हो ।”

सुनकर मि० मेहरा जोर से खिलाखिला पड़े । लगा जैसे सहसा कहीं बादल गड़गड़ा उठे हैं ।

शीला मुन्ने को पकड़ने उठी । मिसेज मेहरा ने उन्हें रोकते रोकते कहा—

“जाने दीजिए । बच्चा है !”

मुन्ना ने अपमान की आग में जल भुनकर जोर से डंक मारा था । सोचा था जिसे डंक मारा है वह मारे दर्द के चीख पड़ेगा । पर जब देखा कि वह तो उल्टा हँस रहा है तो मुन्ना का रोम-रोम बुरी तरह जल उठा । लगा जैसे जिस डंक को चुभोने आया था सो वह स्वयं ही टूट गया है ।

मुन्ना ने निश्चय किया—

उसे दूसरा डंक खोजना होगा और उसी खोज में पैर पटकता वहाँ से चला गया ।

× × × ×

शीला ने भोजन परोसा । मिसेज मेहरा बोलीं—

“आपके हसबन्ड कभी हम लोगों का साथ नहीं देते ।”

शीला कृत्रिम हँसी हँसती बोली—

“उन्हें तो अकेले रहना ही अच्छा लगता है ।” मिस्टर मेहरा ने समर्थन किया—

“यस, पोइट्स आर द लवर्स ऑफ सॉलीच्यूड !”

कुछ देर रुक कर । बोले—

“बट शुड ही नॉट टीच हिज् चाइल्ड गुड मैनर्स ?”

शीला बोली—

“आज कल कुछ ज्यादा ही जिद्दी हो गया है” मिसेज मेहरा ने विषय बदला । बोलीं—

“तो ऊपर ही थाली पहुंचा दो ।”

“वे इस समय नहीं खाते ।”

“मुन्ना को तो बुला लीजिये ।”

“अभी उसे रहने दीजिये, गुस्से में है । बखेड़ा करेगा……बाद में खालेगा ।”

जैसे ही उन लोगों ने खाना शुरू किया, तभी न जाने कहाँ से निकलकर मुन्ना सामने आ खड़ा हुआ । उसकी दोनों मुट्ठियाँ धूल से भरी थीं । नथुने फुलाकर बोला —

“मैं सबकी थाली में मिट्टी डालूंगा । छिप-छिपके खाते हैं । मेरे बाबूजी को क्यों नहीं खिलाते ?”

शीला गुस्से में काँपती उठी । मुन्ना उस आसन्न संकट को देखकर मुठ्ठियों में भरी धूल थालियों में पटकता भाग गया ।

शीला धमधमाती ऊपर वाले कमरे में सुधीर के पास जा पहुँची । क्रोध में हाँफती बोली—

“चलो, देखो चलकर अपने ज़ाड़ले की करतूत ! हम लोगों के खाने में मिट्टी फेंक कर भाग गया है ।”

सुधीर ने शान्त स्वर में कहा—

“उसे अन्याय सहने की आदत नहीं है ।”

“किसने किया है अन्याय ?”

“जो थप्पड़ तुमने उसके गाल पर मारा है उसका दर्द जबतक रहेगा तब तक वह कुछ भी कर सकता है ।”

“तो सुन लो उसने कुछ किया तो अब मैं उसकी हड्डी पसली तोड़ डालूँगी ।”

सुनकर इतने दिनों से जो आवेग अन्दर ही अन्दर दबा आ रहा था, सहसा ज्वालामुखी की भाँति भड़क उठा । उसकी आँखों में अंगारे दहक उठे । सारी ताकत लगाकर चिल्लाया—

“शी S S ला S S S S …… !”

बीच ही में सुधीर को लगा जैसे अचानक उसके फेफड़ों में कुछ अटक गया है । वह रुद्ध-कंठ जहाँ का तहाँ लुढ़क गया ।

सुधीर को इस प्रकार चीखते पुकारते शीला ने कभी नहीं देखा-सुना था । सुनकर वह हत-बुद्धि-सी मुँह फाड़े कुछ देर जहाँ की तहाँ खड़ी रही । एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला । फिर चुपचाप कमरे से बाहर चली गई ।

सुधीर कुछ देर एक-एक साँस के लिए लड़ता-सा बिछोने पर पड़ा रहा । उसे लगा जैसे अचानक ही उसका अन्त आ गया है । कैसे भी साँस नहीं आ रही थी । चाहा कि उठकर पास रखे घड़े से लेकर

दो घूँट पानी पीले पर उससे उठा ही नहीं गया ।

मुन्ना कमरे में आया । अपने बाबूजी को इस तरह पड़े देख उसका जी रोने-रोने को होने लगा ।

सुधीर ने अपनी सारी शक्ति बटोर कर धीरे से कहा—

“पा नी.....!”

मुन्ना ने दौडकर घड़े से गिलास भर कर पानी दिया । सुधीर ने एक घूँट पिया और तब आई उसे पूरी साँस !

मुन्ना कमरे में आने से पूर्व महाबली अंगद की भाँति मि० मेहरा और अपनी माँ की लंका नगरी में जो कुछ कर आया है, उसी को लेकर मन ही मन कमजोर हो रहा था ।

बाबूजी ने इशारे से अपने पास बुलाया । सोच रहा था— जो अपराध नीचे कमरे में वह कर आया है उसके लिए उसके बाबूजी अवश्य ही डाँटेंगे । तभी सुधीर ने खींचकर उसे छाती से चिपटा लिया । कुछ देर वे दोनों पिता-पुत्र, सखा-बन्धु, उसी मुद्रा में लेटे रहे । जब सुधीर कुछ स्वस्थ हुआ तो भरपिे स्वर में बोला—

“मुन्ना !”

“हां बाबूजी !”

“अगर मैं मर जाऊँ तो—”

“तो—”

“हां, तो तू क्या करेगा ?”

“तो.....” कहते कहते ! मुन्ना अपनी बांहें सुधीर के गले में डालकर जोर से चिपट गया—जैसे उसके बाबूजी को अभी-अभी कोई छीनकर उससे दूर ले जाना चाहता है और वह कैसे भी बेसा नहीं होने देगा ।

मुन्ना की आंखों से गर्म-गर्म आंसू ढरक-ढरक कर सुधीर की बांह पर भरने लगे ।

सुधीर मन ही मन पछताने लगा । सोचने लगा कि उसने वैसी बात मुन्ना से क्यों कही ?

वह एक हाथ से मुन्ना की पीठ थप-थपाकर बोला—

“बेटे ! बहादुर बच्चे रोते नहीं है ।”

“तो आप वायदा करिये ।”

“कौन सा वायदा ?”

“कि आप कभी नहीं मरेंगे ।”

“अच्छा, जाओ किया वायदा ।”

“देखो, जब सारी दुनियाँ मर जाये तब भी नहीं ।”

“हाँ तब भी नहीं ।”

सुनकर मुन्ना ने संतोष की साँस ली जैसे अचानक आये किसी भारी संकट से जैसे-तैसे बच गया है । फिर नन्हें-नन्हें हाथों से अपने आँसू पोछता बोला—“बाबूजी ! कभी वायदा भूलना नहीं ।”

“नहीं मुन्ना ! कभी नहीं । कभी नहीं ।” कहते-कहते सुधीर का गला भर आया ।

उस दिन सबेरे से ही रिमझिम हो रही थी । न जाने क्यों पानी की यह रिमझिम सदा सुधीर पर नशा बनकर छा जाती है । मौसम के ऐसे नशे में लिखना उसे बहुत अच्छा लगता है । साथ ही अपने नये उपन्यास के ऐसे स्थल पर पहुँच गया है कि कलम रोके नहीं रकती, पर मुन्ना के लिए क्या करे ? वह भूखा रह सकता है पर मुन्ना को तो होटल ले जाकर खिलाना ही पड़ेगा ।

सुधीर ने लिखते-लिखते ही कुछ निश्चय किया । मुन्ना को बुलाकर बोला—“बेटा ! आज तुम्हारी अम्मा की छुट्टी है । आज उन्हीं के साथ खा-पीलो ।”

उस नन्हीं आत्मा ने यह कैसे भी स्वीकार नहीं किया कि बिना बात के जिस माँ ने उसके गाल पर थप्पड़ मारा है, जो उसके बाबूजी को खाना बनाकर नहीं खिलाती, जो अकेले चुपचाप खाती है और दूसरों को खिलाती है, उसी माँ के सामने वह दीन होकर जाये और कहे—“माँ ! मैं भूखा हूँ । खाना दे दो ।”

नहीं, वह नहीं जायेगा । कभी नहीं जायेगा ।

अन्त में हारकर सुधीर मुन्ना को लेकर बाजार गया । पंजाबी तंदूर की रोटियों से जैसे-तैसे पेट भरकर जब दोनों लौटे तो पानी थम गया था ।

आकाश में नीले, सिलेटी, जामुनी रंग के बादल उस अनन्त नीलिमा में तैरते जा रहे थे । सुधीर अपनी उस मोटी कापी में सिर झुकाये लिखे जा रहा था और मुन्ना पास ही लेटा खुली खिड़की से आकाश में तैरते उन बादलों को देखने लगा ।

उन तैरते बादलों में उसने न जाने ऐसा क्या देखा कि जोर से चिल्ला पड़ा—

“बाबूजी !”

सुधीर लिखते लिखते ही बोला—

“क्या है मुन्ना ?”

“बाबूजी ! देखो पहाड़ ! पहाड़ !”

“कहाँ ?”

“आकाश में ।”

उसने सिर झुकाये ही कहा—“ आकाश में पहाड़ कैसे आये ?”

“बाबूजी ! तुम देखते तो हो नहीं ।” कहते-कहते उसने अपने नन्हें हाथों से सुधीर की ठोड़ी पकड़कर आकाश को ओर कर दी ।

सुधीर ने देखा आकाश में बादलों की तरह-तरह की आकृतियाँ बन-बनकर मिट रही हैं । कुछ बादल सचमुच ही आकाश में पहाड़ जैसे अचल स्थित हैं । कुछ देर उस ओर देखकर वह फिर लिखने लगा ।

बीच ही में मुन्ना उल्लास भरे स्वर में चिल्ला पड़ा—

“अहा ! अहा !! पहाड़ पर खरगोश ! खरगोश !! बाबूजी खरगोश !!”

अपनी कापी पर आँखें गढ़ाये ही सुधीर बोला—“मुन्ना ! क्या कहते हो ?”

“हाँ बाबूजी ! खरगोश ।”

“तेरे बाबूजी क्या खरगोश है ?”

सुनकर मुन्ना खिलखिला पड़ा ।

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा फिर आकाश की ओर देखता-देखता मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! हाथी-हाथी-हाथी !!” कहता-कहता वह सहसा चुप हो गया ।

थोड़ी देर बाद सुधीर ने सुनी मुन्ना के होठों से फूटती एक दबी भयभीत चीख !

उसने कापी से आँखें हटाकर मुन्ना की ओर देखा—वह अपने दोनों हाथों से आँखें बन्द किये पड़ा है ।

सुधीर ने स्नेह से थपथपा कर पूछा—

“क्या हुआ बेटा ?”

वह काँपते स्वर में बोला—

“हाथी ने खरगोश को खा लिया !”

सुनकर सुधीर को हँसी आ गई ।

अपने उतने बड़े दुःख में अपने बाबूजी का हँसना उसे बहुत बुरा लगा । वह चुपचाप सुधीर की ओर पीठ फेरकर लेट गया ।

सुधीर ने कापी एक ओर सरका दी और उसके पास ही लेट गया ।

कुछ देर दोनों में से कोई भी न बोला । अन्त में सुधीर बोला—
“मुन्ना ! अपने बाबू जी से रुठते हो ?”

मुन्ना ने जवाब नहीं दिया । सुधीर चुपचाप धीरे-धीरे उसकी पीठ थपथपाने लगा । थोड़ी ही देर में मुन्ना की गहरी नियमित साँसें सुनकर उसने जान लिया कि वह गहरी नींद में सो गया है ।

सुधीर अपने लिखने में डूब गया । लिखते-लिखते जब अक्षर धुंधले हो उठे तो उठकर बत्ती जलाई और आकर लिखने में मन लगाया । सुधीर लिख रहा था और मुन्ना पास ही पड़ा स्वप्न देख रहा था ।

मुन्ना ने सपना देखा—

वह उड़ रहा है । उड़ते-उड़ते फूला नहीं समाता । सोच रहा है—
अरे ! मैं भी उड़ सकता हूँ ?

उड़ता-उड़ता बादलों पर जा पहुँचा । वह उड़ता है एक चोटी से दूसरी पर, दूसरी से तीसरी पर..... उछलता है—सोचता है—ओह ! मैं इतना उछल भी सकता हूँ ? बादल की एक चोटी से दूसरी पर !

सहसा उसने देखा उन बादलों में से एक काला हाथी निकला । धीरे-धीरे हाथी के सिर की जगह वह किसी ओरत का सिर बन गया । बादल जितना बड़ा सिर !

उसने पहिचाना—

अरे ! यह तो उसकी अपनी अम्मा है.....लेकिन इतना बड़ा सिर इतने बड़े दाँत.....कैसी बड़ी-बड़ी फटी डरावनी आँखें हैं.....दाँतों में लटकती लाल जीभ.....काले बिखरे बाल.....अम्मा उसे पकड़ना चाहती है.....वह भागना चाहता है—पर राम ! यह क्या हुआ न दौड़ पाता है.....न उछल पाता है.....न उड़ पाता—यह उसे हो क्या गया और वह सिर उसी की ओर बढ़ता आ रहा है ।

वहीं एक ओर खड़े हैं उसके बाबूजी । वह चीखना चाहता है—बाबूजी को पुकारना चाहता है पर आवाज भी तो नहीं निकलती !

बाबूजी को यह क्या हुआ ? वह सब कुछ देखकर हँस क्यों रहे हैं—.....अरे वह सिर तो बिलकुल उसके पास आ गया.....बाबूजी बचाते क्यों नहीं ? वह सारी ताकत लगा कर चीख पड़ा—

“बाबूजी s s s !”

लिखते-लिखते सुधीर ने मुन्ना के होठों से फूटता शब्द सुना—

“बाबूजी s s s !”

लिखना बन्द हो गया । कलम एक ओर रखकर उसके माथे पर हथेली रक्खी । मुन्ना की आँखें खुल गईं । पर अब भी वह काँप रहा था । मारे भय के उसका मुँह सफेद पड़ गया था ।

सुधीर अचरज भरे स्वर में बोला—

“क्या हुआ बेटा !”

वह रुठता-सा बोला—

“मैं नहीं बोलता।”

“क्यों?”

“आपने बचाया क्यों नहीं?”

“किसे?”

“मुझे।”

“किससे नहीं बचाया?”

“डायन से”

कहते-कहते मुन्ना काँप गया। कुछ देर वैसा ही पड़ा रहा फिर अपने बाबूजी के कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से फुसफुसाया—

“बाबूजी ! अम्मा डायन है”

पर सुधीर कुछ भी न समझा पाया कि इस समय वैसा वक्तव्य वह क्यों दे रहा है।

× × × × •

रात के दस बजे होंगे। मुन्ना फिर सो गया था। सुधीर ने थककर कलम और कापी एक और रख दी। दोनों हाथों को उठाकर पीठ सीधी की। सहसा उसे लगा जैसे उसकी छाती में सुइयाँ सी चुभने लगी हैं। धीरे-धीरे वह चुभन शान्त हो गई।

तभी सीढ़ियों पर किसी की पदध्वनि सुनाई पड़ी। वह दरवाजे की ओर देखने लगा।

बिजली के प्रकाश में उसने देखा—

एक दुबली-पतली स्त्री, नुकीली नाक—पतले ओंठ, लाली से लिपे-पुते...

वह कमरे के बीच में चुपचाप खड़ी थी। कुछ देर कोई भी न बोला।

तब रुआँसी सी गीले स्वर में वह स्त्री बोली—

“में मिसेज मेहरा हूँ।”

सुधीर ने विगत महीनों में अनेकों बार शीला के मुँह से उनका नाम सुना है पर कभी देखा नहीं था।

स्वागत भरे स्वर में बोला—

“आइये ! बैठिये !!”

मिसेज मेहरा चुपचाप बिछौने के एकसिरे पर बैठ गईं। कुछ दूर चुपचाप सिर झुकाये बैठी रहीं। धीरे-धीरे सिर उठाकर सुधीर की ओर उन्मुख हुईं।

सुधीर ने जो उनकी ओर देखा तो मारे अचरज के वह हत-बुद्धि सा रह गया। मिसेज मेहरा की आँखों में आँसू डबडबा आये थे। उनके पतले ओंठ बार-बार कुछ कहने के लिए काँपते थे पर कुछ भी कह न पाती थीं।

सुधीर आश्चर्य स्वर में बोला—

“कहिए! क्या हुआ ?”

“आपकी मिसेज ने मुझे पीटा है।”

सुनकर वह हत बुद्धि-सा मुँह फाड़े रह गया। होठों से अनायास स्वर फूटा। बोला—“पीटा है ! क्यों ?”

“में गुस्से में पागल हो गई थी। मेरी एक फ्रेंड ने आपकी मिसेज को नई दिल्ली के एक सिनेमा घर में मेरे हसबन्ड के साथ देखा था। कल शाम को उसने मुझे बताया था।”

“लेकिन प्रोग्रेसिव फेमलीज में तो यह चलता ही है।”

“में पसन्द नहीं करती।”

“तो यही बात आप शीला को समझाकर कह देतीं। इसमें झगड़े की क्या बात थी ?”

“यही तो आज मैंने कहा था। तो तड़पकर बोलीं—

‘तुम किसी को मिलने-जुलने से नहीं रोक सकती’

कहकर चुप रहीं फिर उफन कर बोली—

‘मिसेज मेहरा ! यू लिव इन मिडिविइल एज बट इट इज ट्वेन्टीएथ सेंचुरी ।’

इस पर मैं मारे गुस्से के पागल हो गईं । मैं न जाने क्या-क्या उलट पुलट बोल गई । बस, वह तों आकर मुझ पर ऐसी दूटी कि मार-मार के मुझे बेहोश कर दिया ।”

उसने गौर से उनकी ओर देखा । उनके चेहरे पर जगह-जगह खरोचें ओर सृजन थी ।

आविष्ट स्वर में बोला—

“घर पर उस समय कोई नहीं था ?”

“नरेश को घुमाने नौकर बाहर चला गया था और मि० मेहरा दफ्तर से लौटे नहीं थे ।”

“मि० मेहरा से आपने कहा ?”

“हाँ कहा था ।”

“क्या बोले ?”

“वह भी उल्टे मुझ पर ही बरस पड़े । बोले—“शी इज ए कल्चर्ड लेडी । यू शुड नाँट हेव विहेव्ड इन देट वे ।”

× × × ×

उस घटना के थोड़े दिनों बाद ही अपनी पड़ोसिन काकी से उसने खबर सुनी कि मिसेज मेहरा बड़ी शक्की मिजाज की औरत थीं । शक में पड़ कर उन्होंने आत्महत्या करली है ।

साथ ही यह भी बताया कि बहू की सहेली थी—बहू का काम बढ़ गया—मृत माँ के अभागे बच्चे को भी अब बहू ही सँभालती है!

फिर कुछ समय के बाद उन्हीं काकी ने आकर एक दिन उसे समझाया—

‘लाख सहेली थी बेटा ! पर ऐसा भी कहीं होता है दुनियाँ में ? चार दिन हो गये । बहू घर । में ही नहीं आई ! ऐसा भी क्या तुम्हारा लिखना पढ़ना... कि दुनियाँ की कुछ खबर ही नहीं । बिना औरत वाले घर में जाकर रहती है—नहीं बेटा ! तुम बहू को सँभालो राम ! राम !!’

सुनकर मारे घृणा के सुधीर को फुरफुरी सी आ गई । उसका सारा पिंजर कांप गया ।

× × × ×

सुधीर जब मि० मेहरा की कोठी पर पहुँचा तो देखा कि प्रमुख द्वार पर बड़ा सा ताला लटक रहा है । तभी एक माली चुरट फूँकता उसके पाँस आया । बोला—

“का बात है बाबू ?”

“साहब कहाँ गये ?”

“उनकी बदली हो गई । बाबू बम्बई चला गया ।”

“वाल बच्चे भी साथ गये हैं ?”

सुनकर वह घबरा गया । इधर उधर कनखियों से एक बार देखा फिर पास आकर धीरे से फुसफुसाया—

“कहने की बात नहीं है बाबू ! साहब एक चुड़ैल से फँस गया था । घर वाली तो जहर खा-खू के मरि गई और साहब उसी चुड़ैल को लेके बम्बई चला गया ।”

सुनकर सुधीर को लगा जैसे अचानक उसके हृदय में किसी ने शूल चुभोदिया है ।

घर आकर उसने शीला के कमरे का ताला तोड़ा । अन्दर जाकर देखा—शीला का बिस्तर ज्यों का त्यों बिछा है । पाँयती ओर अब भी फर्श पर उसके सिलीपर रखे हैं । लगता है जैसे जल्दी में बिना सिलीपर पहने कहीं चली गई है और अब लौटने ही वाली है ।

अलमारी, शृंगारदान सब ज्यों के त्यों हैं। तेल की शीशी खुली है। पास ही कार्क पड़ा है। क्रीम-पाऊंडर की शीशियाँ जहाँ की तहाँ रखी हैं। उसने वहीं पड़ा कंधा देखा, जिसमें सिर के टूटे बाल उलझे थे।

वह कुछ देर स्तब्ध सा शीला के उन बालों को देखता रहा। उन बालों को देखते-देखते उसे याद आया—

पार्टी में शीला पहिली बार उसके घर आई थी। तब वह वसुन्धरा थी। वह उसके सामने ही बैठी थी और यही थे वे बाल ! जो टेलिफोन की हवा से उस दिन लहरा रहे थे।

उसने आगे बढ़कर कंधे को उठा लिया। बालों को कंधे से निकाल लिया। शीला के बिछौने पर बैठा हथेली पर बालों को रखे बड़ी देर तक देखता रहा।

शीला के उन बालों को देख-देखकर न जाने कौसी-क्या बातें उसे याद हो आती हैं। रह-रह कर पसलियों को हिलाती अन्दर से एक हिलोर आती है और कंठ को कंपाती बार-बार वापिस लौट जाती है।

X X X \

रात के नौ बजे हैं। शीला के उन बालों को हथेली में लिए सुधीर बैठा है। मुन्ना ऊपर के कमरे में सो गया है।

समझ नहीं पाता कि क्या करे वह ? कैसे सहे इतने बड़े क्लेश को ? केवल क्लेश ही तो नहीं है, आज उसके पौरुष का अपमान भी तो हुआ है।

रह-रहकर उसे ध्यान आता है कि वह ऐसा पुरुष है जिसकी औरत दूसरे के साथ चली गई है। नहीं-नहीं कुछ देर यहाँ इसी तरह बैठा रहा तो पागल हो जायगा।

वह उठा और स्वप्न में चलने वाले व्यक्ति (Somnambulist) की भाँति सीढ़ियों से उतरता सड़क पर आ गया।

वह सड़क पर चूपचाप चला जा रहा है। सहसा अपनी पुरानी कोठी के द्वार पर जा खड़ा हुआ।

खड़ा-खड़ा सोचने लगा—यही है वह कोठी, जहाँ उसने अपने जीवन के चौबीस वर्ष बिताये थे। जिसमें से उसे एक मँले घिनौने कीड़े की भाँति निकालकर फेंक दिया गया था, जिसमें कितनी मार-पीट, घृणा अपमान सहा है! तभी उसकी समझ में आया कि उस कोठी पर आज वह इसलिए चला आया है कि इतना बड़ा दुख बिना अपनी भाभी के प्रेता नष्ट न हो पायेगा। आज बिना भाभी को देखे पागल हो जायेगा।

कैसे भी आज अपनी भाभी से मिलेगा। वह नहीं चाहता कि उसे कोई देखे। माँ, भाई पिता सबसे उसे नफरत है। ऐसी नफरत कि उनके चेहरे याद आते ही मारे क्षोभ—घृणा के उसे फुरफुरी छूट जाती है।

अभावस्था की काली घनी रात थी। वह सवरे लुकता छिपता फाटक खोल कर अन्दर चला गया।

वह जानता है कि भाभी प्रायः रसोई घर में ही रहती है। इसलिए सीधा रसोई घर की ओर चल दिया। वह सामने से न जाकर रसोई घर की पिछली खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। खिड़की बन्द थी। अन्दर से वर्तनों के खटकने की आवाज आ रही थी।

खिड़की के पास खड़ा-खड़ा सोचने लगा—अब भाभी कैसी हो गई होगी। उसे यहाँ अचानक देख कर वह क्या सोचेंगी? उनका चेहरा कैसा हो जायेगा? क्या अब भी वे उस पर नाराज हैं? कहेगी—इतने दिन चोरों की तरह कहाँ छिपा रहा?

तय किया कि वसुन्धरा की बात वह नहीं बताएगा। जिस दुःख

को लेकर वह दौड़ा-दौड़ा यहाँ तक आया है उसे भाभी पर प्रगट नहीं करेगा । वह सब कुछ कह कर उन्हें दुःख नहीं देगा ।

तभी खिड़की खुली । वह काँप कर एक ओर हट गया । हटकर उसने अपनी भाभी को एक बार छिपकर देखना चाहा किन्तु यह क्या ? भाभी के स्थान पर जिस चेहरे को उसने देखा सो देखकर ठिठक गया ।

खिड़की पर कुहनी टेके कोई पहाड़ी नौकर चुरट फूँक रहा था । नौकर ने सुधीर को देख लिया । चोर की आशंका से बोला—

“कुन है ?”

“मैं हूँ ।”

“क्यों खड़ा है यहाँ ? किस को चाता है ?”

“डाक्टर साहब है ?”

“नहीं है !”

“कहाँ गये ?”

“वह यहाँ अब नहीं रहता ।”

“कहाँ रहता है ?”

“नई कोठी बनवाया है ।”

“डाक्टरनी जी है ?”

“कुन डाक्टरनी जी ?”

“उनकी ओरत”

“वह तो कभी की मर-मरागई ।”

सुनकर सुधीर को लगा—जैसे अचानक उसके पैरों के नीचे धरती काँप उठी है । वह जहाँ का तहाँ चुपचाप खड़ा रहा ।

नौकर रसोई से बाहर आया । उस अंधकार में उसके पास आकर बोला—

“तू कौन है ? नौकरी चाहता है ?”

सुधीर चुप रहा।

उसने सुधीर की ओर चुरट बढ़ाकर कहा—‘ले चुरट पी। नोकरी एक दो मेरी निगाह में है।’

“बड़ी मालकिन कहाँ है?”

“वह बढ़िया? उसकी तो बड़ी-बातें मैंने सुनी हैं। उससे बड़ा बाबू नाराज था। कोठी में सब कहता है कि तीरथ करने गई है।”

“डाक्टरनी जी कैसे मरीं?”

“किस को पता भाई! मुझ से पहिले का नौकर कहता था कि डाक्टर ने नई कोठी में ले जाकर उसे मार डाला। भाई! जाने क्या-क्या होता है इन शाली कोठियों में……कोन जाने……तू किस कोठी में काम करता था?”

सुधीर ने जबाब नहीं दिया। कुछ देर चुप खड़ा रहा फिर बिना कुछ कहे वहाँ से चला दिया।

वह पहाड़ी वहीं खड़ा रहा। कुछ देर खड़ा-खड़ा उसकी ओर देखता रहा फिर जोर का एक कश खींचा। अंधकार में बीड़ी के सिरे पर प्रकाश का छोटा सा वृत्त बन कर सहसा बुझ गया।

पहाड़ी बीड़ी के टुकड़े को एक ओर फेंक कर बड़बड़ाया—

“वह भी शाला पागल है!”

×

×

×

सुधीर चुपचाप घर की ओर चला जा रहा है। उसके अन्दर ज्वाला मुखियों के कैसे-कैसे उत्पात उठ रहे हैं पर वह उन सबको दबा गया है। आग की छोटी चिनगारी भी कहीं नहीं फूटी।

सुधीर जब अपने कमरे में लौटा तो मुन्ना बिछोने पर लेटा था। वह खिड़की पर ठोड़ी टेक कर आकाश की ओर देखता बैठ गया।

बचपन में उसने न जाने किसके मुँह से सुना था कि सबका अपना-अपना तारा होता है। मर कर आत्माएँ तारे बन जाती हैं, फिर आकाश-दीप बनकर अपने प्रिय जनों को देखती हैं—प्रकाश देती हैं !

आज अपने इतने बड़े दुःख में उसे बचपन की वही बात याद हो आई।

हम बड़े होकर समझते हैं कि बचपन बीत गया, पर सच बात यह है कि हमारा बचपन अंतिम साँस तक हम से नहीं छूटता। न जाने कहाँ-कैसे सदा हमारे अन्दर छिपा बैठा रहता है।

बड़े होने पर सुख-दुःख के अतिशय आवेगों में वही बचपन सिर निकालकर कभी खिलखिलाता है, कभी सिसक उठता है।

अपनी इस दुस्सह वेदना और चरम दुःख में सुधीर भी नितान्त शिशु की तरह खिड़की पर ठोड़ी टिकाये आकाश के अनन्त तारों में—उन असंख्य आकाश-दीपों में अपनी भाभी को खोज रहा था, इस आशा में कि—

वे इन्हीं असंख्य तारों में कहीं बैठीं अब भी उसे देख रही होंगी !

धीरे-धीरे आकाश के समस्त दीप बुझ गये और फिर उगा झिल-मिलाता शुक्र तारा !

तभी उसे याद आया वह पत्र ! जो किसी अपरिचिता ने वर्षों पहिले स्विटजरलैंड से भेजा था।

उसे लग रहा है कि वर्षों से जिस पत्र को इवते समय तिनके की भाँति ही वह ग्रहण करता आ रहा है, आज वही पत्र उसका एकमात्र सहारा रह गया है। एक मात्र प्रकाश ! जैसे आकाश के बुझते दीपों में यह शुक्र तारा !

सोचने लगा—इतने बड़े संसार में कहीं तो कोई ऐसी आत्मा है जो उसका आदर करती है—स्नेह करती है, जिसने उसे आज तक .

नहीं देखा फिर भी उसका साहित्य पढ़कर अपने स्वप्नों का संसार बनाती है—

उसे रह-रह कर उसके पत्र में लिखी एक-एक बात याद आने लगी ।

उसने आंखें बन्द कर लीं । अचानक लगा जैसे बन्द पलकों में वही पत्र-लेखिका साकार हो उठी है ! जैसे आकाश से उतरती एक श्वेत प्रतिमा !

वह धीरे धीरे अंधकार में बिखर जाती है । बारबार बनती है और मिट जाती है !

जो बात हमारे वश की नहीं, जो हमारी पहुँच के बाहर है, उसी को पाने के लिए हम जीवन भर प्रयत्न करते हैं, उसी की कल्पना, उसी के स्वप्न देखते-देखते जीवन बिता देते हैं। यही है निरीह मानव के अवश जीवन की धुँधली—भिलमिल कहानी ! यही होते हैं अपने-अपने आकाश-दीप, जिन्हें हम छू नहीं पाते पर जिन के सहारे जैसे-तैसे जीवन बिता लेते हैं। ऐसे ही स्वप्न देखते-देखते विगत सारी रात सुधीर ने अपनी खिड़की पर ठोड़ी टिकाये ही बितादी है। उसके चेहरे को देखने से लगता है जैसे एक ही रात में वह बूढ़ा हो गया है।

जब सुबह मुन्ना उठा तो कुछ देर तक वह अपने बाबू जी के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखता रहा फिर बोला—

“बाबू जी !”

“—”

“बाबू जी !”

“हाँ बेटा !”

“तुम उदास क्यों हो ?”

“— —”

“बाबू जी ! अम्मा कहाँ गई हैं ?”

“बाहर गई हैं।”

“कब लौटेंगी ?”

“लौट आयेगी।”

न जाने किन सूत्रों से मुन्ना ने अपने इस छोटे से जीवन में ही जान लिया है कि उसकी अम्मा और बाबू जी में भगड़ा, चीख-पुकार सब इसी रुपये को लेकर है—

अपने बाबू जी की ओर देखता-देखता बोला—

“बाबू जी ! उदास क्यों होते हो ? अब मैंने एक तरकीब निकाल है, बस दो एक दिन की बात है ! फिर तो रुपयों से अपना घर भर जायेगा ।”

सुधीर ने अपने ही में डूबे-डूबे कहा—

“अच्छा !”

“हाँ, बाबू जी ! फिर खूब रसगुल्ले, खीर खायेंगे, एक मोटर गाड़ी लायेंगे... फिर अम्मा भी नहीं पीटेंगी... क्यों बाबू जी !”

सुधीर ने सब ओर से ध्यान खींचकर पूछा—

“लेकिन ये रुपये आयेंगे कहाँ से ?”

यह सुनते ही मुन्ना उठकर बिछौने पर बैठ गया । बोला—

“अपनी काकी तो मकान छोड़कर चली गई, उसी मकान में नए लोग आए हैं! उनकी एक छोटी लड़की है, वही कल कह रही थी ।”

“क्या कह रही थी ?”

“कह रही थी कि उसकी दीदी जादू का एक राक्षस बना रही हैं । उसके हाथ बन गये हैं, टांगे बन गई हैं, बस सिर बनने की देर है—जैसे ही सिर बना कि फिर तुम देखना.....”

“क्या होगा फिर ?”

“फिर उस राक्षस से हम जो भी मँगायेंगे हमें लाकर दे देगा । हम कहेंगे—

‘राक्षस इधर आ’ सुनते ही पहिले तो वह हमें डरायेगा—लेकिन तुम डरो नहीं..... अकड़ के कहो—‘जाओ रुपये लाओ ! खीर लाओ, रसगुल्ले लाओ..... मोटर लाओ,’ बस वह लाकर एक मिनिट में दे देगा ।”

सुनकर सुधीर ने चाहा कि कह दे—‘बेटा ! यह सब झूठ है-कल्पना है—सपना है’ लेकिन सहसा उसे याद आयी अपनी विगत रात !

सारी रात बैठा-बैठा वह अपनी भाभी को तारों में खोजता रहा था । उसे याद आया कि कैसे झूठी आशा को लेकर उसने सारी रात बिता दी और उस अपरिचिता का वह पत्र ! एक भीठा सपना !!

यही सोचकर वह चुप रहा । तभी मुन्ना अपने सुनहले सपने की उमंग में उछलता सुधीर की गोदी में आ बैठा ।

मुन्ना को राक्षस वाली बात में विश्वास तो है किन्तु जब तक किसी बात के सम्बन्ध में वह अपने बाबूजी का अभिमत नहीं जान लेता तबतक उसे पूर्ण विश्वास नहीं होता ।

वह गोदी में बैठा अपने बाबूजी के उदास चेहरे की ओर देखता-देखता बोला—

“बाबूजी ! बताओ वह जादू का राक्षस रुपये ला सकता है ?”

आज सुधीर इतना अशक्त है कि कैसे भी मुन्ना के उतने बड़े सपने को नहीं तोड़ सकता । धीरे से बोला—

“हाँ बेटा ! ला सकता है ।”

सुनकर मारे खुशी के उसका रोम-रोम खिल गया । वह उठा और नीचे की ओर खिसकते निकर को एक हाथ से ऊपर की ओर खींचता पड़ोस में भाग गया ।

× × × ×

शीला को घर से गये लगभग एक मास बीत गया है । लगता है उस चोट को भी उसने सह लिया है । आजकल वह अपना नय उपन्यास लिख रहा है । उपन्यास के पात्र उस पर ऐसे छा गये हैं कि थोड़ी सी देर के लिए भी उन्हें छोड़ नहीं पाता । लगता है जैसे वे पात्र ही कलम पकड़ कर उससे अपनी-अपनी कहानी लिखाये जा रहे हैं । आज उसने सारी रात जागकर उपन्यास समाप्त किया था ।

नया उपन्यास लिखकर सन्तोष का साँस ली, पर रुपयों का

क्या करे ? उसने कई बार सोचा कि प्रकाशकों के पास जाकर जो कुछ मिले सो ले आये किन्तु अब तो उससे बाहर भी नहीं निकला जाता ।

जब वह बाहर जाकर लोगों से मिलता है तो मारे लाज के उसकी आँखें मुँद जाती हैं । उसे लगता है जैसे सब मन ही मन उसके बारे में कह रहे हैं—“यही है वह पुरुष जिसकी औरत किमी हमारे के साथ चली गई है ।” कितने दिनों से उसका वह कमरा उसके लिए कारावास बन गया है । कुछ देर बाहर जाकर घूम-फिर आने के लिए मन छटपटाने लगा ।

जब मुन्ना को साथ लेकर वह नीचे उतरा तो देखा जो लोग नए-नए आकर मकान में बसे हैं उनके नाम की तख्ती लग गई है । द्वार पर दो तीन चमचमाती मोटर गाड़ियाँ खड़ी हैं । कुछ सेठ ऊपर चढ़ रहे हैं । कुछ नीचे गाड़ी में बैठ रहे हैं ।

तख्ती के सामने खड़े होकर उसने पढ़ा—एम. एन. टैम्बे बार-एट लाँ

पढ़कर उसने अपने अर्थ लगाए । वह धीरे से मुस्कराया—फिर मन ही मन बड़ बड़ाया—

बार-एट ला—वैरिस्टर—

अर्थात् नए अद्भुत भूठ गढ़-गढ़कर सच्चाई को फांसी पर चढ़ा देता है । भूठ ही जिसके जीवन का अर्थ-उद्देश्य है ।

× × × ×

वह हारा थका मुन्ना को साथ लिये जब बाहर से लौटा तो रात के दस बज चुके थे । जैसे ही ऊपर के कमरे में आने के लिए सीढ़ी पर पैर रक्खा कि चीते जैसा विशालकाय कुत्ता भौंकता सामने आ खड़ा हुआ । मुन्ना आगे-आगे सीढ़ियों पर चढ़ रहा था । अपनी भयंकर आवाज से सारे मकान को कँपाता कुत्ता मुन्ना पर भपटा । मुन्ना चीख पड़ा ।

सारी रात बैठा-बैठा वह अपनी भाभी को तारों में खोजता रहा था । उसे याद आया कि कैसे झूठी आशा को लेकर उसने सारी रात बिता दी और उस अपरिचिता का वह पत्र ! एक भीठा सपना !!

यही सोचकर वह चुप रहा । तभी मुन्ना अपने सुनहले सपने की उमंग में उछलता सुधीर की गोदी में आ बैठा ।

मुन्ना को राक्षस वाली बात में विश्वास तो है किन्तु जब तक किसी बात के सम्बन्ध में वह अपने बाबूजी का अभिमत नहीं जान लेता तबतक उसे पूर्ण विश्वास नहीं होता ।

वह गोदी में बैठा अपने बाबूजी के उदास चेहरे की ओर देखता-देखता बोला—

“बाबूजी ! बताओ वह जादू का राक्षस रुपये ला सकता है ?”

आज सुधीर इतना अशक्त है कि कैसे भी मुन्ना के उतने बड़े सपने को नहीं तोड़ सकता । धीरे से बोला—

“हाँ बेटा ! ला सकता है ।”

सुनकर मारे खुशी के उसका रोम-रोम खिल गया । वह उठा और नीचे की ओर खिसकते निकर को एक हाथ से ऊपर की ओर खींचता पड़ोस में भाग गया ।

× × × ×

शीला को घर से गये लगभग एक मास बीत गया है । लगता है उस चोट को भी उसने सह लिया है । आजकल वह अपना नय उपन्यास लिख रहा है । उपन्यास के पात्र उस पर ऐसे छा गये हैं कि थोड़ी सी देर के लिए भी उन्हें छोड़ नहीं पाता । लगता है जैसे वे पात्र ही कलम पकड़ कर उससे अपनी-अपनी कहानी लिखाये जा रहे हैं । आज उसने सारी रात जागकर उपन्यास समाप्त किया था ।

नया उपन्यास लिखकर सन्तोष का साँस ली, पर रुपयों का

क्या करे ? उसने कई बार सोचा कि प्रकाशकों के पास जाकर जो कुछ मिले सो ले आये किन्तु अब तो उससे बाहर भी नहीं निकला जाता ।

जब वह बाहर जाकर लोगों से मिलता है तो मारे लाज के उसकी आँखें मुँद जाती हैं । उसे लगता है जैसे सब मन ही मन उसके बारे में कह रहे हैं—“यही है वह पुरुष जिसकी औरत किमी दूसरे के साथ चली गई है ।” कितने दिनों से उसका वह कमरा उसके लिए कारावास बन गया है । कुछ देर बाहर जाकर घूम-फिर आने के लिए मन छटपटाने लगा ।

जब मुन्ना को साथ लेकर वह नीचे उतरा तो देखा जो लोग नए-नए आकर मकान में बसे हैं उनके नाम की तख्ती लग गई है । द्वार पर दो तीन चमचमाती मोटर गाड़ियाँ खड़ी हैं । कुछ सेठ ऊपर चढ़ रहे हैं । कुछ नीचे गाड़ी में बैठ रहे हैं ।

तख्ती के सामने खड़े होकर उसने पढ़ा—एम. एन. टैम्बे बार-एट लाँ

पढ़कर उसने अपने अर्थ लगाए । वह धीरे से मुस्कराया—फिर मन ही मन बड़ बड़ाया—

बार-एट ला—वैरिस्टर—

अर्थात् नए अद्भुत झूठ गढ़-गढ़कर सच्चाई को फांसी पर चढ़ा देता है । झूठ ही जिसके जीवन का अर्थ-उद्देश्य है ।

×

×

×

×

वह हारा थका मुन्ना को साथ लिये जब बाहर से लौटा तो रात के दस बज चुके थे । जैसे ही ऊपर के कमरे में आने के लिए सीढ़ी पर पंर रक्खा कि चींते जैसा विशालकाय कुत्ता भौंकता सामने आ खड़ा हुआ । मुन्ना आगे-आगे सीढ़ियों पर चढ़ रहा था । अपनी भयंकर आवाज से सारे मकान को काँपाता कुत्ता मुन्ना पर झपटा । मुन्ना चीख पड़ा ।

फिसलकर सीढ़ियों पर गिर रहा था कि जैसे-तैसे सुधीर ने उसे बच लिया ।

तभी ऊपर की बिजली जली । पड़ोसी बैरिस्टर साहब सिगार फूँकते-मुस्कराते हुये बाहर आ खड़े हुये ।

सुधीर ने उठाकर मुन्ना को गोद में ले लिया । मारे भय के वह सुधीर से चिपट गया था । दिल जोर-जोर से धक-धक कर रहा था ।

सुधीर अन्दर ही अन्दर जल रहा था पर बोला नहीं । वह धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ने लगा । जब ऊपर की सीढ़ी पर आया तो कुत्ता जोर से गुर्राता सुधीर की ओर लपका । मुन्ना काँपकर चीख पड़ा ।

वे साहब मुस्काते बोले—

“डॉन्ट वरी बाबू ! डरता काहे को है ? राँवर सेन्सिबिल डॉग है आज नया आया है इसीलिए । जान जायेगा फिर नहीं बोलेगा—भौंककर डराता है, काटता नहीं—”

सुधीर ने सब चुपचाप सुन लिया कोई उत्तर नहीं दिया ।

दूसरे दिन सुबह जब मुन्ना सीढ़ियों से उतर रहा था तभी वह सेन्सिबिल (समझदार) कुत्ता मुन्ना पर भौंकने लगा । मारे डर के वह सीढ़ियों से फिसलकर नीचे जा पड़ा ।

उसकी चीख-पुकार सुनकर सुधीर दौड़ा-दौड़ा नीचे आया । मुन्ना का होंठ सीढ़ी से टकराकर कट गया था । उसके सफेद दाँत खून से भरकर लाल हो उठे थे । आँखों में भय छा गया था । सिर पर कुत्ता भौंक रहा था ।

सुधीर को लगा जैसे वह इतना हीन है ! इतना कमजोर है कि बच्चे की अपने घर ही में रक्षा नहीं कर पाता । सोचने लगा--उस पड़ोसी को, जिसके चेहरे पर बड़प्पन का अभिमान है, पिछली रात ही क्यों नहीं डाट दिया !

तभी वे पड़ौसी कमरे से बाहर आये । कुत्ता दौड़कर पूँछ हिलाता उन साहब की अंगुलियाँ चाटने लगा ।

सुधीर ने मुन्ना को सीढ़ियों से उठाया और उसके ओंठ से निकलते खून को पोंछने लगा । मारे गुस्से के उसका सारा बदन कांप रहा था । मन कह रहा था कि झपटकर उस अभिमानी पड़ौसी के फूले गाल पर जोर से एक थप्पड़ जड़ दे पर किसी तरह अपने को दबा गया । शान्त स्वर में बोला—

“देखिये आप इस जानवर को बाँधकर रक्खा करिये ।” लेकिन बोलते-बोलते क्रोध के आवेग ने उसे दबा लिया । बोला—

“अब आगे इस तरह की बात हुई तो मैं आपके इस सन्सिबिल कुत्ते का तिर तोड़ दूँगा ।”

कहते-कहते उसने उन पड़ौसी की ओर देखा—

पड़ौसी की खोपड़ी पर वाल नहीं थे । उसने देखा कि वे अपने सन्सिबिल कुत्ते का अपमान नहीं सह पाये हैं । मारे क्रोध के उनकी गजी खोपड़ी तक लाल हो गई है । बड़े तपाक से बोले—

“तुम जानता है हम कौन हैं ?”

सुधीर बोला—“तुम’ नहीं ‘आप’ । बोलना सीखिये और कभी मत भूलिये कि अब अगर कुत्ता इधर आया तो……तो……।”

“बोलो……बोलो……तो क्या करेगा ? क्या करेगा ?”

“तो इस कुत्ते के साथ उसके मालिक का भी इत्तजाम करना होगा !”

“अच्छा, समझा—हमको मारने की धमकी देता है । हम कोर्ट में दावा करेगा । समझता क्या है—हम बैरिस्टर हैं बैरिस्टर !

सुनकर भीतर ही भीतर उठते दुर्निवार क्रोध को एकबार फिर दबा लिया । बिना कुछ कहे वह मुन्ना को गोदी में उठाये अपने कमरे की ओर जाने लगा ।

तभी उसके कानों में बैरिस्टर का गुरगुरता कण्ठ स्वर सुन पड़ा—

“समझता क्या है अपने को ? हम सेठ से कहकर कल इसका सामान सड़क पर फिकवा देगा—इडियट-ब्लडी फूल—”

सुधीर ने मुन्ना को बिछीने पर लिटा दिया । उसकी पीठ थपथपा कर बोला—

“चुपचाप यहीं लेटना । मे अभी आता हूँ ।”

सुधीर नीचे आकर उन बैरिस्टर के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ । दरवाजा बन्द था । दो तीन बार कुण्डा खटखटाय़ा । अन्दर से उन्हीं बैरिस्टर की भर्राई आवाज सुन पड़ी—

“कौन है ?”

“दरवाजा खोलिये ।”

साथ ही किसी नारी का कण्ठ-स्वर भी सुन पड़ा—

“पापा ! दरवाजा मत खोलिए ।”

जब कई बार कुण्डा खट-खटाने पर भी नहीं खुला तो वह शान्त स्वर में बाहर से ही बोला—

“देखिये, अभी-अभी आपने जो कुछ मेरे लिए कहा है वह मैंने सुन लिया है । आपके आगे पीछे ये जो कार-कोठी वाले पूँछ हिलाते घूमते हैं, उन्हें इस तरह का व्यवहार करते देखकर आप अभिमान में ग्रन्थे हो गये हैं ! आप.....”

बीच ही में अन्दर से भर्राई आवाज आई—

‘यहां से चले जाओ ! नहीं तो हम पुलिस को फोन करता है ।’

साथ ही वही पतला कण्ठ-स्वर—

“पापा ! चुप रहिए न !”

सुधीर ने शान्त स्वर में कहा—

“देखिये, आप चाहे पुलिस बुलाइये या मिलिट्री पर यह कभी मत

भूलिए कि आपके पड़ोस में एक इन्सान रहता है—इडियट—ब्लडीफूल नहीं !”

×

×

×

उस बात को दस दिन बीत गये । एक साँझ को जब सुधीर घर लौटा तोदेखा कि उसके कमरे की काया-पलट हो गई है ।

मेज पर बिखरीं सागी किताबें किनारे जा लगी हैं । कमरे में तिरछा लटका मुन्ना का चित्र सीधा हो गया है । फटा कलेन्डर हट कर उसके स्थान पर नया आ चुका है । उसके जूते सिलीपर सब करीने से रख दिये गये हैं ।

कई दिन पहिले उसने अपने कपड़े धोकर नीचे की मंजिल में सुखा दिये थे, अब अस्त्री किये हुए, अखबार में लिपटे मेज पर रखे हैं ।

वह अचरज में भरा सब कुछ देख रहा था । तभी मुन्ना ने कमरे में प्रवेश किया । उसके चेहरे पर उल्लास फूटा पड़ता है । कमरे के बीच में खड़े होकर अपनी सबसे बड़ी खुशी की घोषणा की—

“वाबू जी ! जादू का राक्षस बन गया ।”

“अच्छा ।”

“उसका मकान भी बन गया ।”

“कहाँ ?”

“मन्तू की छत पर ।”

“मन्तू कौन ?”

“दीदी की छोटी बहिन । हम सबने मिलकर मकान बनाया है । मकान में मन्तू की गुड़ियाँ पलंग पर लेटी हैं । एक गुड़िया खीर बना रही है । थाली कटोरी गिलास सब रखे हैं । दरवाजे पर राक्षस खड़ा है ।”

“राक्षस क्या करेगा ?”

“आप समझते तो हैं नहीं। आज कल बच्चों को बोरी में दबा कर चोर ले जाते हैं। गुड़ियों को कोई ले जाये तो ! राक्षस रात को पहरा लगायेगा।”

“अच्छा !” कहकर वह चुप रहा फिर बोला—

“मुन्ना ! कितावें, कलेन्डर यह सब किसने ठीक किये हैं ?”

सुनकर मुन्ना कुछ देर सोचता रहा। फिर न जाने क्या सोच कर उसका चेहरा खिल आया। जोर से बोला—

“आपको पता ही नहीं ?”

“नहीं तो.....।”

“बाबू जी ! यह भी उसी राक्षस ने किया होगा।”

“लेकिन यह सब करने के लिए उस राक्षस से कहा किसने ?”

जिस रहस्य को मुन्ना ने सहज ही सुलझ लिया था सो अपने बाबू जी का नया तर्क सुनकर अचानक उलझ गया।

बच्चे जब किसी बात में इस तरह उलझ जाते हैं तो सदा अपने इच्छित-विश्वासों (wishful thinking) के सहारे थोड़ी ही देर में उस उलझन को मिटा लेते हैं। तब हम बड़े समझते हैं कि बच्चा भूठ बोल रहा है।

कमरे की उलट फेर का कर्त्ता होने का अभिमान लेकर प्राशस्त्य स्वर में बोला—

“बाबूजी ! उस राक्षस को मैंने हुकम दिया था।”

किन्तु सुधीर ने मुन्ना की बात नहीं सुनी। वह मन ही मन सोचने लगा— शायद पड़ोस में जो नये किरायेदार आकर बसे हैं उनमें जो ‘दीदी’ नाम से जानी जाती हैं, उन्हींने यह सब कुछ किया होगा। पर नहीं ! वे बड़े आदमी हैं। उन्हें बड़े होने का अभिमान ही नहीं है, उन्हींमें बड़प्पन का दर्प भी है। तो फिर किसने किया है यह सब ?

सुधीर के लिए कमरे की काया-पलट एक रहस्य बन गया ।
ऐसा रहस्य—

जिसमें अन्दर ही अन्दर न जाने कैसा भीना सुनहला संसार
झिलमिला जाता है ।

आशायें परियाँ बन-बन पंख पसारे आती हैं—मीठी-मीठी लोरियाँ
गाकर निरीह थके इन्सान को सुला देती हैं और तब वह देखता है—

भावी जीवन के मीठे सुखद सपने !

सुधीर बैठा-बैठा ऐसा ही कोई सपना देखने लगा कि—

इस इतना बड़ी दुनिया में कोई ऐसा होता—जो उसके सुख-दुख
का साथी होता—जो उसके घावों की पीड़ा मरहम बनकर मिटा देता !

आह ! इतने लम्बे जीवन में सुख की एक साँस भी नहीं !!

सोचते-सोचते उसे लगा जैसे कमरे से बाहर कोई अपनी लम्बी
उसाँस दबाता चुपचाप वहाँ से चला गया है !

मनुष्य की इस देह में सहने की जो शक्ति है, उसकी भी एक सीमा है। रुपये के अभाव में दिनरात के लगातार अपमान और छी-छी—का दोभ ढोते-ढोते सुधीर थक गया है।

वह मनुष्य है। उसे भी भूख-प्यास लगती है किन्तु पूंजीवाद के इस युग में पैसा आता है अपने से कमजोर को मिटाकर या अपने पूंजी-पति मालिक के सामने दुम दबाकर खीसों काढ़ने से, पर सुधीर क्या करे ?

इन दोनों मार्गों में से वह एक पर भी तो नहीं चल पाता। वह अपनी इसी अक्षमता के दर्द को तरह-तरह से लिखता है।

वह दर्द उसका अपना नहीं है, वह करोड़ों इन्सानों का दर्द है ! वह चाहता है कि रुपये की चक्काचौध में जिनकी आँखें अन्धी हो गई हैं, वे अपने को पहिचानें ! इसलिए—

वह अपनी छाती का खून सुखा-सुखा कर दिन रात लिखे जा रहा है। उसे पढ़ कर पाठक रस लेते हैं, प्रकाशक रुपये का लाभ उठाते हैं और वह..... वह दिन रात अपने ही को खा-खाकर लिखे जा रहा है किन्तु आज थोड़ी देर पहले जो घट गया है उस से लगता है कि उसके सहने की जो सीमा-रेखा थी सो अचानक कहीं टूट गई है।

बात यह हुई कि वह मुन्ना को लेकर होटल में खाना खाने गया था। रास्ते में मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! आप रोज रोटी दाल खिलाते हैं। आज तो मैं खीर खाऊँगा।”

सुधीर ने कहा—“नहीं मुन्ना ! आज नहीं फिर कभी ।”

मुन्ना अड़ गया और सुधीर को खीर खिलाने का आश्वासन देना पड़ा ।

खीर की खुशी में मुन्ना अपने बाबूजी की अंगुली छोड़कर होटल की ओर दौड़ा और उससे पूर्व ही होटल में जाकर ढाबे के नौकर से बोला—

“आज हम खीर खायेंगे । जल्दी लाओ ।” उसने पूछा—

“बाबूजी कहाँ हैं ?”

“आ रहे हैं, जल्दी करो ।”

तभी सुधीर आकर मुन्ना के पास वाली कुर्सी पर बैठ गया और ढाबे के नौकर से बोला—“खाना लाओ दो प्लेट स्पेशल खीर भी !”

“अच्छा बाबू !” कहकर नौकर चला गया ।

पीछे से मुन्ना ने फिर आवाज लगाई—

“जल्दी लाओ ।” कहकर न जाने कैसे आनन्द में भरकर उसने अपने बाबूजी का हाथ अपनी ओर खींचा । अपने नन्हें हाथों में उसका हाथ लिये वह सुधीर की ओर देखते-देखते मुस्काने लगा । बार-बार उसके दो नन्हें दाँत जो टूटे दाँतों की जगह थोड़े-थोड़े मसूड़ों पर आ गये हैं, चमक जाते हैं !

जब मुन्ना उल्लास में इस तरह मुस्काता है तो उसके बायें गाल में छोटा-सा गड्ढा पड़ जाता है ।

सुधीर उसके नन्हें हाथ को धीरे-धीरे थपथपा रहा था । वे दोनों पिता-पुत्र रह-रहकर एक दूसरे की ओर देखते हैं और मुस्करा उठते हैं ।

उसी समय ढाबे का नौकर आया । सुधीर के सामने कागज की एक

चिट रखकर बोला—

“मैनेजर साहब ने दी है।”

सुधीर ने पढ़ा—

“आपका बिल बहुत चढ़ गया है। पहले पिछला चुका दीजिये।”

पढ़कर सुधीर को लगा जैसे चारों ओर से काली अंधियारी सी घिरती आ रही है। उस अंधियारी में उड़ रही हैं असंख्य नीली—पीली बिन्दियाँ और साथ ही उसकी छाती में सुइयाँ सी चुभने लगी।

कुछ देर वह ज्यों का त्यों कुर्सी पर बैठा रहा। जब कुछ स्वस्थ हुआ तो मुन्ना का हाथ पकड़ कर बोला—

“मुन्ना ! उठो !!”

“क्यों बाबूजी !”

“चलो मेरे साथ।”

“नहीं बाबूजी !”

सुधीर ने दृढ़ स्वर में कहा—

“जिद नहीं करते है बेटा।”

“नहीं बाबूजी ! मैं तो खीर खाऊंगा। मैं नहीं जाऊंगा, नहीं, जाऊंगा।”

कहते हैं यदि परोसी पत्तल पर कहीं से आकर कोई भूखा कुत्ता भी खाने लगे तो उसे भी नहीं हटाया जाता, पर यहाँ भूखे इन्सान को भोजन के आसन से उठा दिया गया है।

मैनेजर के उस अप्रत्याशित अमानुषिक हृदयहीन व्यवहार ने बच्चा-घात की तरह उसकी चेतना को एक दम लुप्त कर डाला था।

वह किसी भी तरह उस चोट को न सह पाया। न सह पाने की अवशता ही में उसने तड़ाक् से मुन्ना के मुँह पर तमाचा जड़ दिया।

मुन्ना रोया नहीं। क्षोभ और अचरज से मुँह फाड़े अपने बाबूजी

को देखता का देखता रह गया ।

तभी मैनेजर दौड़ा आया । अपने नोकर से बोला—“बाबू के लिए जल्दी थाली लाओ ।” फिर सुधीर से बोला—“बाबू ! आज के लिए तो मैंने इन्कार नहीं किया था । इतना बुरा क्यों मान गये ?”

दूसरे ही क्षण सुधीर की चेतना लौट आई । अपमान की वह आग आँसू बनकर पिघल उठी । वह आँखों के छलछलाते आँसुओं को पी गया । शान्त स्वर में बोला—

“धन्यवाद !”

फिर मुन्ना का हाथ पकड़कर कहा—

“चलो बेटे !”

मुन्ना उठकर चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दिया पर वह अभाग कैसे भी न समझ पाया कि आज उसके बाबूजी को अचापक यह हो क्या गया !

वे दोनों होटल से निकल कर सड़क पर आगये । मैनेजर और ढाबे के नोकर-चाकर अचरज से उन दोनों को जहाँ के तहाँ खड़े देख रहे थे ।

× × × ×

सुधीर घर आकर चुपचाप बिछौने पर लेट गया । मुन्ना भी बिना कुछ बोले पास आ लेटा किन्तु पीठ फेर कर ।

कई बार सुधीर के मन में आया कि मुन्ना को छान्नी से चिपटा कर एक बार अपने अपराध के लिए, अपनी हैवानियत के लिए क्षमा माँग ले पर एक बार उस नन्हें शरीर की ओर देख भर लेने की हिम्मत तक नहीं हो रही थी । चाहा कि उसे पुनर्कार ले पर अपने निलज्ज व्यवहार के उत्पीड़न ने कैसे भी उसके होंठ नहीं खुलन दिये !

जब कुछ स्वस्थ हुआ तो अलमारी से भ्रूशूठी निकाली और बाजार

चला गया ।

अँगूठी बेचकर कुछ खाने-पीने का सामान लेकर जब कमरे में लौटा तो देखा कि मुन्ना कमरे में नहीं है । खड़ा-खड़ा सोचने लगा कहाँ गया ? तभी पड़ोसियों की छतसे मुन्ना का क्रोधित काँपता कंठ-स्वर सुनाई पड़ा ।

सुधीर कमरे से निकलकर बाहर आया । मुन्ना पड़ोसियों की छत पर था । सुधीर अपनी सीढ़ियों के पास जाकर मुन्ना को बुलाने लगा ।

पड़ोसियों से कुछ दिनों पहिले ही उस कुत्ते को लेकर भगड़ा हो चुका था । इसी लिए वह उन की छत पर नहीं जा रहा था । सोचा— बैरिस्टर हैं । उनकी छत पर पैर रखते ही न जाने कानून की कौन सी धारा टूट जाये । जब मुन्ना ने नहीं सुना तो पड़ोसियों के द्वार तक बढ़ गया । उनकी छत पर जो दृश्य देखा सो देखकर दंग रह गया ।

पड़ोस में रहने वाली मुन्ना की दीदी ने जादू के राक्षस को जिस घर का पहिरे दार बनाया था सो उस घर को गुड़ियों सहित मुन्ना ने तोड़कर बिखेर दिया है । गुड़ियों की सारी गृहस्थी-पलंग, कटोरियाँ गिलास थालियाँ, सब कुछ छत पर इधर उधर बिखरे पड़े हैं ।

उन बिखरी चीजों के बीच खड़ा मुन्ना जोर-जोर से चीख रहा था—
“और बोलो भूठ ! मे तुम्हारी सब गुड़ियों को मार डालूँगा ।”

छत के दूसरे सिरे पर सीढ़ियों से रोती-सिसकती एक छोटी सी बच्ची आई । उसे देखकर सुधीर ने अनुमान लगाया कि यही है वह मन्नू जिसकी सजी सजाई गृहस्थी उजाड़ दी गयी है ।

उस छोटी मन्नू के पीछे जो आई सो उन्हें देखकर सुधीर एक ओर को हट गया ।

दोपहर का समय था । बैरिस्टर घर में नहीं थे । शायद कचहरी गये थे । इसलिए उस छोटी मन्नू की रक्षा का भार उसी युवती-कन्या पर आ पड़ा था ।

उस दृश्य को देख कर बैरिस्टर की कन्या को न तो गुस्सा आया,

न चीखी-चिल्लाई । चुपचाप खड़ी मीठा-मीठा मुस्काने लगी ।

उनको इस तरह मुस्काते देख मुन्ना क्रोध में पागल हो उठा । उसने चीजें इधर-उधर फेंक कर उन्हें दण्ड दिया है और वे हँस रही हैं ! उसे लगा जैसे उसका छोड़ा हुआ तीर उल्टा लोटकर उसीके आ चुभा है ।

मुस्से में काँपते मुन्ना ने खींचकर पास पड़ी गुड़ियों की छोटी सी लोहे की कढ़ाई उठाकर उनकी ओर फेंकी । कढ़ाई उनके माथे पर जा लगी । वे 'उई' करती जहाँ की तहाँ बैठ गईं ।

सुधीर का मन हुआ कि दौड़कर जाये और मुन्ना को पकड़ लाये । पर यही सोचकर फिर रुक गया कि छत उसी कानून-विशारद की है, साथ ही औरतों का मामला है ! वह चुपचाप जहाँ का तहाँ खड़ा रहा ।

मन्नू की वे दीदी सफेद रेशमी साड़ी पहिने थीं । उसने दूर ही से देखा कि माथे पर जहाँ वह कढ़ाई जाकर लगी थी, वहाँ से लाल खून की बूँदें छलक आई हैं और रेशम की सफेद साड़ी उन बूँदों से रँग गई है ।

तभी मुन्ना का काँपता क्षुब्ध कण्ठ स्वर सुनाई पड़ा—

“और हँसोगी ? बड़ी आई है दीदी कहीं की !”

वे माथे से खून पोंछती बोलीं—

“मुन्ना भइया ! सुन, यहाँ तो आ ।”

मुन्ना पास नहीं आया किन्तु उसके इतने बड़े अपराध के उत्तर में उस मीठे कंठ-स्वर को सुनकर वह अन्दर ही अन्दर नरम हो आया ।

वे मुन्ना के पास आकर चुपचाप खड़ी हो गईं । वह धीरे से बोला—

“तुमने झूठ क्यों बोला था ?”

“क्या बोला था मैंने झूठ ?”

“कहती थीं जादू का राक्षस रुपये देगा, खीर देगा और अभी थोड़ी देर पहिले मन्नू कहती थी कि यह सब झूठी बातें हैं ।”

असल में बात यह हुई कि भूखा मुन्ना जब होटल में अपने बाबू जी से पिटकर घर लौटा तो सीधा पड़ीस में गया। उसने मन्नु से कहा कि “अपने जादू के राक्षस से खीर मँगा दो” सुनकर वह हँस पड़ी। हँसते-हँसते बोली—“वह तो सब झूठ-मूठ की बातें हैं।”

बस इसी बात को लेकर मुन्ना हनुमान बनकर मन्नु की उस अशोक वाटिका का ध्वंस करने के लिए जुट गया था।

सुनकर वे दीदी आगे बढ़ आईं। मुन्ना के दोनों नन्हें हाथ अपने हाथों में ले लिये।

मुन्ना आज भूखा है, दुखी और अपमानित है। उसे स्नेह की शीतल छाँह चाहिए। उसने अनुभव किया जैसे दीदी के उन हाथों में से न जाने कौसी धारा बह-बहकर उसके शरीर में प्रवेश कर रही है। मुन्ना थोड़ा और सरक कर उन से सटता खड़ा हो गया।

तभी वे बोलीं—“मुन्ना ! तुम रुपयों का क्या करोगे ?”

सुनकर मुन्ना का गला भर आया। बोला—“दीदी ! हमें क्या भूख ही नहीं लगती ? बिना रुपयों के कहीं खीर मिलती है ! होटल वाले ने मना कर दिया।”

सुनकर लगा जैसे उन दीदी का समस्त चेहरा अचानक दीप्त होकर बुझ गया है। कुछ देर वे चुप खड़ी रही। फिर मुन्ना को उठाकर गोद में ले लिया। मुन्ना को लगा जैसे उसका रोम रोम-रोम भर गया है। अब न कहीं भूख है, न अपमान का दर्द है।

मन्नु पास ही खड़ी आश्चर्य चकित सी उन दोनों की बातें सुन रही थी। दीदी ने मन्नु की ओर देखा और कृत्रिम क्रोध भरे स्वर में बोलीं—

“क्यों री ! तूने झूठ क्यों बोला ? जा, उस राक्षस को मेरे पास ला। मैं अभी उससे खीर मँगवाती हूँ।”

सुनकर मुन्ना का चेहरा धीरे-धीरे खिल आया । उधर सुनकर मन्तू को भी कम अचरज नहीं हुआ । वह दोड़ी-दौड़ी गई और उस राक्षस को उठा लाई ।

कुछ फटे पुराने कपड़ों को दो लकड़ियों पर लपेट कर जादू के राक्षस की रचना हुई थी । सिर पर रामलीला में काम आने वाले राक्षस के एक चेहरे को लगाया गया था ।

मन्तू ने राक्षस को लाकर अपनी दीदी के सामने रख दिया ।

दीदी ने मुन्ना को गोदी से नीचे उतारा और बोली—

“तुम लोग आँखें बन्द करलो । मैं अभी इससे खीर मँगाती हूँ ।”

बच्चों ने जल्दी, जल्दी आँखें बन्द कर ली । दीदी बोली—

“ए जादू के राक्षस ! मेरा हुक्म सुनो । जल्दी जाओ और खीर लाओ ।”

बच्चों की ओर मुड़कर बोली—

“आँख बन्द रखो । खोलना मत । आँखे खोली तो खीर नहीं आयेगी ।”

बच्चों ने घबराकर खूब जोर से आँखों पर अँगुलियाँ जमालीं कि कहीं गलती से पलक न खुल जायें ।

उसी समय दीदी ने उस राक्षस को उठाया और छत के कोने पर रखे कोयले के ड्रम में डाल दिया, फिर चुपचाप जहाँ की तहाँ बच्चों के पास आ खड़ी हुई । बच्चे आँखें बन्द किये खड़े थे ।

वे बोली—

“आँखें खोल दो ।”

आँखें खोलकर जब बच्चों ने देखा कि राक्षस अपनी जगह पर नहीं है तो मारे कौतुक के वे दोनों आँखें फाड़े अपनी दीदी को देखते के देखते रह गए ।

मुन्ना ने धीरे से दीदी का हाथ अपने हाथों में ले लिया । बोला—

“दीदी ! राक्षस ने तुम्हें डराया था ?”

बोली “हाँ, बड़े जोर से मुँह फाड़कर मेरी ओर दौड़ा आया था ।”

“फिर.....।”

“फिर बहादुर क्या डरते हैं ? मैंने उसे हुक्म दिया कि ‘ऐ जादू के राक्षस, मेरा हुक्म सुनो—जल्दी जाओ—खीर लाओ ।’

दोनों एक साथ बोले “हाँ, हमने सुना था । फिर क्या हुआ ?”

“बस मेरा हुक्म सुनकर राक्षस ने हाथ फैलाये और आकाश में उड़ गया ।”

“कब लौटेगा ?”

“खीर लाने दूर क्षीर-सागर पे जाना पड़ता है । आधा पौन घन्टा तो लगेगा ही ।”

मुन्ना ने विश्वास के स्वर में कहा—

“अच्छा !”

कहते कहते वह अपनी दीदी के माथे पर लगी चोट को देखने लगा । फिर बोला—

“दीदी !”

“हाँ ।”

— — — ।”

“मुन्ना ! क्या बात है ?”

कुछ देर मुन्ना चुप रहा फिर दीदी के कान के पास मुँह ले जाकर कुछ फुसफुसाया । सुनकर दीदी हँसने लगी । उठाकर उसे छाती से चिपटा लिया और वे दो संतप्त आत्माएँ स्पन्दित हो एक दूसरे को छू-छूकर सिहर उठीं ।

सुधीर अपनी जिस गौरवमयी इन्सानियत का दावा करके आज तक अपने सम्पर्क में आने वालों को सदा अपने से छोटा ही समझता आया है, सो लगा जैसे उन दीदी की शालीनता के सामने सब कुछ

फीका पड़ गया है।

अपनी सीढ़ियों के पास खड़ा सोचने लगा—

जिसके पिता को एक दिन उनका सिर फोड़ने तक की धमकी दे आया था, सो उन्हीं की पुत्री अपना सिर फुड़वाकर उसके पुत्र की गोदी में लिए बैठी है। सोच-सोचकर उसकी इन्सानियत का वह प्रखर अभिमान गल गलकर बहने लगा।

वहाँ खड़े-खड़े उसे लगा जैसे एक प्रकार का नशा धीरे-धीरे उस पर छाता जा रहा है। उसका सारा शरीर काँपने लगा। जैसे-तैसे चल कर वह अपने बिछौने पर आ पड़ा।

स्नेह-ममता से स्निग्ध उस युवती का चेहरा—उसकी सरस बात चीत-व्यवहार, एक-एक करके आदि से अन्त तक उसे याद आने लगा।

उसके मन में बार-बार एक ही बात अनेकों तरह से उठती है कि आज थोड़ी देर पहले उसने एक ऐसी अलौकिक चीज देखी है, जो इस धरती पर असम्भव है किन्तु फिर भी उसके लिए विश्वसनीय है !!

सुधीर निरीह प्रकृति का पुरुष है। आवेग, उच्छ्वास सहसा उसे नहीं छूपाते किन्तु उस तरुणी में आज उसे न जाने ऐसा क्या दिखाई दे गया है कि उसका सम्पूर्ण हृदय उसके प्रति किसी अज्ञात कृतज्ञता से भर गया है।

सोचने लगा—

मुन्ना उसका अपना अंश है। उसे प्यार भी वह कम नहीं करता किन्तु फिर भी आज होटल के मैनेजर की हृदय हीनता का दण्ड उस निरपराध नन्हीं आत्मा को देकर ही उसने अपने अभिमान की रक्षा का थी और.....और.....एक वह है—उसका मुन्ना से परिचय ही कितने दिनों का है.....कैसी निराभिमानता पाई है.....मुन्ना के उतने बड़े अपराध—उपद्रव को कैसे अपनी सहज मुस्कान की मधुरिमा में ढाँप लिया था.....अपनी

छोटी बहन मन्नु पास खड़ी सिसक रही थी। गुड़ियो की उस नगरी का कैसा विध्वंस हुआ था—उसके माथे पर चोट आई थी किन्तु एक क्षण के लिए भी चंचल नहीं हुई। चीख पुकार कर तनिक भी अपने को छोटा नहीं किया।

ऐसी ही न जाने कितनी बातें सोचते-सोचते एक प्रकार की अविचल श्रद्धा से अभिभूत हो मन ही मन उस गोरवमयी के प्राते उसका सिर झुक गया।

सहसा द्वार के बाहर एक कोमल नारी-कण्ठ सुनाई पड़ा—

“तुम अन्दर जाओ। मैं भेजती हूँ।” और साथ ही सुन पड़ा मुन्ना का विजयघोष—

“उठो, बाबूजी ! उठो ! उठो !!”

कहता-कहता मुन्ना कमरे में आया और आनन्द में चमकती आँखों से अपने बाबूजी को देखता-देखता बोला—

“बाबूजी ! जादू का राक्षस आ गया। इतनी खीर लाया है कि तुम चाहे कितनी खाओ.....।”

सुधीर उसकी खुशी में शामिल होकर कौतुक से बोला—

“अच्छा !”

“बाबूजी ! तुम यह मत समझना कि आज लाया है। दीदी कहती हैं कि जब भी चाहो तभी वह राक्षस से खीर मँगा सकती हैं।”

सुनकर सुधीर को याद आई किसी के माथे पर लगी चोट ! क्षुब्ध कर्कश स्वर में बोला—“और एक तुम हो कि जब भी चाहो तभी अपनी दीदी का माथा फोड़ सकते हो।” कहकर उसने एक-तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखा।

खुशी से चमकता मुन्ना का चेहरा बुझ गया। तभी उसकी निगाह मुन्ना के बायें गाल की ओर गई। उसका बायाँ गाल लाल होकर सूज आया था। गाल की उस सूजन को देखकर उसे याद आई अपनी निर्लज्ज निर्दयता !

यह याद आते ही कि अभी-अभी थोड़ी ही देर पहले उसने कमरे में बाहर धीमा अस्फुट नारी कण्ठ-स्वर सुना था, वह मारे शर्म के पानी पानी हो उठा।

सहसा उसकी निगाह द्वार पर पड़े पर्दे की ओर गई। पर्दे के एक छोर को दो पतली गोरी अंगुलियाँ एक ओर खींच रहीं हैं। उसी के साथ अन्दर आया पड़ोस का नौकर। उसकी दोनों हथेलियों पर दो थाल थे। वह धरती पर बैठ गया। मुन्ना ने एक-एक करके उन थालों को नीचे रख दिया। बगुला के पंखों जैसे श्वेत चौकोर कपड़ों से दोनों थाल ढके थे।

(बच्चों के हृदय भी सरोवर में लहलहाते कमल-दलों की भाँति कोमल और स्निग्ध होते हैं। दिन रात बड़ों की निर्दय डाँट और निर्लज्ज फटकार उन दिलों पर बरसती है पर कमल के पत्तों पर पड़ी पानी की बूंदों की तरह दुलक जाती है। वे रो-पीटकर थोड़ी ही देर में अपने बड़ों की निर्ममता को भूलकर उनकी गोदी में आ बैठते हैं।)

सहने और सहकर भूल जाने की यह शक्ति यदि भगवान् ने इन बच्चों को न दी होती तो निश्चय ही अपनी यह सारी धरती पागलों से भर जाती।

थोड़ी ही देर में मुन्ना अपने बाबूजी की उस कठोर बात को भूल गया था, जिसे सुनकर उसका खिलता चेहरा थोड़ी ही देर पहिले बुझ गया था।

मुन्ना कमरे के बीच में खड़ा था। उसका समस्त चेहरा आनन्द से दीप्त हो उठा था। कह रहा था—

“बाबूजी ! जल्दी से हाथ धो लो, नहीं तो फिर हम नहीं जानते।”

“नहीं तो क्या होगा मुन्ना !”

“दादी कहती थीं कि अगर खीर जल्दी नहीं खाई तो राक्षस हम

दोनों को पकड़कर उड़ा ले जायेगा ।”

तभी द्वार के बाहर किसी की दबी हँसी सुनाई पड़ी, फिर लगा जैसे हँसी का वह स्वर धीरे-धीरे दूर जाकर खो गया है । उससे सुधीर ने अनुमान लगाया कि वे जो अभी-अभी बाहर खड़ी थीं सो अब वहाँ से चली गई हैं ।

सुधीर ने थाली पर रखे उस श्वेत कपड़े को उठाया । कपड़ा उठाते ही मारे अचरज के वह देखता का देखता रह गया । उसे लगा कि जिसने यह सब कुछ बनाया है सो अवश्य ही कोई जादूगरनी है । नहीं तो यह हो कैसे सकता है कि इस पौने घंटे में इतनी सारी चीजें बनकर आ जायें और फिर यह कैसे हुआ कि थाली में रखी एक-एक चीज वही है, जो उसे अति प्रिय है—

हरे धनियाँ की चटनी—पोदीना का रायता—नीबू का अचार—खीर में पड़ी केसर—यह सब क्या मात्र संयोग की ही बात है ? फिर मुन्ना की थाली में पूड़ियाँ हैं और उसकी थाली में बिना चुपड़ी रोटियाँ हैं । उन्होंने कैसे जान लिया कि मैं पूड़ियाँ और चुपड़ी रोटियाँ पसन्द नहीं करता ।

तभी मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! जादू का राक्षस बहुत समझदार है । दीदी कहती थीं कि तुम्हारे बाबूजी पूड़ियाँ नहीं खाते इसलिए राक्षस उनके लिए रोटियाँ लाया है । कहती थी कि मैंने तो खीर मँगाई और राक्षस जाने कितनी चीजें ले आया ।”

सुनकर लगा जैसे सचमुच ही वह जादू का राक्षस उड़ाकर ऐसे लोक में उसे ले गया है जहाँ सब कुछ अविश्वासनीय है पर फिर भी ‘असत्य’ कहकर उस ओर से मुह नहीं फेर पाता ।

इन्द्रजाल

“.....वहाँ एक ऐसा परदा है, जिसके दूसरी ओर गति है, हलचल है, जिसे वह सुन पाता है पर देख नहीं पाता, समझ नहीं पाता ।

ऐसी है वह---

जादू की नगरी ! इन्द्रजाल !!.....।”

वर्षा बीत गई और शरद ऋतु आ गई है। अब वर्षा के काले मटमैले बादल आकाश में नहीं घिरते।

रात के दस बजे होंगे। सुधीर अपनी खिड़की पर ठोड़ी टिकाये शरद के उस निर्मल अनन्त आकाश को बैठा-बैठा देख रहा था।

उसे लग रहा था जैसे वह आकाश एक सीमाहीन भील है जो अबतक शैवाल से ढकी थी किन्तु शरद ऋतु ने आते ही पानी पर छाये शैवाल को फूँककर कहीं दूर तैरा दिया है। अब शैवाल के नीचे से निखर आई है निर्मल जलराशि—अनन्त नीलिमा !

और ऐसा ही है उसका अपना आज का जीवन जिसपर से अब जड़ता की शैवाल मिट गई है। जैसे उसकी कुण्ठित बुझी आत्मा किसी की अनुकम्पा पाकर आलोकित हो गई है पर कैसी है यह जादू की डोर !

सब कुछ आता है रहस्य के सूत्रों में लिपटा हुआ। वह जितना ही उन्हें सुलभाने का प्रयत्न करता है, वे उतने ही अधिक उलभ जाते हैं ! और फिर कभी-कभी सुनता है पर्दों के पीछे अपने उस प्रच्छन्न सूत्रधार की दबी हँसी ! गहरी उसाँस !!

सुधीर के पड़ोस में थोड़े दिनों से यह जो जादू की नगरी बस गई है उसके बारे में मुन्ना रोज उसे तरह-तरह की खबरें दे दिया करता है। उसी से उसने जान लिया है कि—

उसकी दीदी का नाम मीरा है। उनकी एक छोटी बहिन भी हैं, जो कलकत्ते पढ़ती है। रेडियो पर गाती हैं और दशहरे की छुट्टियों में घर आई हैं। किसी से बोलती नहीं हैं। सदा कमरे में अकेली रहती हैं। दीदी उनको बहुत प्यार करती हैं।

एक दिन मुन्ना ने खबर दी कि दीदी और उनके पापा में झगड़ा हुआ, दीदी की छोटी बहिन खूब लड़ी थीं। पापा मन्नू को लेकर कलकत्ते चले गये।

यह खबर सुनकर कुछ अधिक जानने के लिए उसका कौतूहल बढ़ गया। वह जानना चाहता था कि झगड़ा किस बात को लेकर हुआ? कलकत्ते में और कौन-कौन है? मन्नू को साथ क्यों ले गये—

इन सबको क्यों छोड़ गये? पर अपने ज्ञान की सारी शक्ति लगाकर भी मुन्ना उसके कौतूहल को शान्त न कर पाया।

उस रात नौ बज चुके थे। सुधीर पिछले कई दिनों से दिन-रात परिश्रम करके अपनी नई पुस्तक लिखे जा रहा है।

मुन्ना प्रायः पड़ोसियों के यहाँ ही रहता है। वहीं खाता-पीता है। नींद आने पर उन्हीं के यहाँ सो जाता है। इसलिए इधर एकान्त है वह लिखने में डूब गया है। आज अपनी पुस्तक का अन्तिम परिच्छेद लिख कर उसने बत्ती बुझा दी और चुपचाप आ लेटा। लेटते ही उसे नींद आ गई।

सहसा उसके कानों में किसी के रोने की आवाज आई। उसने आँखें खोलीं। आँखें खोलते ही विचार आया—कमरे में प्रकाश कहाँ से आया? वह तो बत्ती बुझाकर सोया था। उसने करवट बदली। देखा—

मुन्ना बत्ती के नीचे आसन पर बैठा है। पेन्सिल से कागज पर कुछ बना रहा है। कभी-कभी लम्बी सिसक उसके होंठों से फूटती है और उसका नन्हा पिंजर हिल जाता है। उसके चेहरे से लगता है कि वह कुछ देर पहिले खूब रो चुका है।

सुधीर चुपचाप लेटा-लेटा थोड़ी देर तक उसे देखता रहा। सामने घड़ी में देखा—ग्यारह बज चुके हैं।

वह समझ नहीं पाता कि इतनी रात गये वह इस तरह कमरे में बैठा क्या कर रहा है ? पड़ोसियों के यहाँ से क्यों चला आया ? क्यों रोया ? क्या हुआ है उसे ?

सुधीर धीरे से उठा और मुन्ना के पीछे जा खड़ा हुआ । मुन्ना जान ही नहीं पाया कि कब उसके बाबूजी उसके पीछे आ खड़े हुए हैं, कि कब से खड़े-खड़े वे सब कुछ देख रहे हैं ।

सुधीर उम सब को देखकर मारे अचरज के मुँह बाये रह गया । समझ नहीं पाता कि वह ससार का आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ कौन-सा आश्चर्य देख रहा है ।

मुन्ना झुका बैठा अपने मन का समूचा दर्द पेन्सिल की नोक से कागज पर उतार रहा है । चित्र बनाते-बनाते उसने अपनी थकी कमर सीधी की । तभी बाबूजी से छू गया । छूते ही चौंक पड़ा । कुछ देर ज्यों का त्यों बैठा रहा, फिर जल्दी-जल्दी अपने पूरे-अधूरे चित्रों को समेटने लगा ।

सुधीर बोला—

“मुन्ना ! हमें नहीं दिखाओगे ? क्या बनाया है ?”

सफनता बोला—

“नहीं ।”

“क्यों ?”

“दीदी ने कहा है कि जब बहुत अच्छा सीख लो तब दिखाना अपने बाबूजी को ।” कहते-कहते मुन्ना रुक गया फिर कुछ देर चुप रहकर बोला—

“अच्छा मैं दिखा देता हूँ पर दीदी से मत कहना ।”

“नहीं कहूँगा ।”

सुधीर उसके पास बैठ गया अपने कागजों में से एक कागज निकाला और बोला—

“बाबूजी ! दीदी से अच्छा चित्र कोई नहीं बना सकता ।”

“हाँ, सो तो है ही ।” कहते-कहने उसने मुन्ना का बनाया हुआ वह चित्र हाथ में ले लिया, उसने देखा—

“चित्र में बादल हैं । बादलों में काला हाथी है । हाथी का मुँह औरत जैसा है । खुला हुआ मुँह—बड़े-बड़े दाँत—

चित्र देखते-देखते सुधीर बोला—

“लेकिन मुन्ना ! हाथी का मुँह तो ऐसा नहीं होता ।”

“ऐसा ही होता है ।”

“लेकिन हाथी का ऐसा मुँह मैंने तो कभी नहीं देखा ।”

“मैंने देखा है ।”

“कहाँ ?”

“सपने में !”

बभी उसकी निगाह चित्र के नीचे कोने की ओर गई । नीचे लिखा था—

“डायन”

सुधीर ने उस शब्द को मन ही मन शुद्ध करके पढ़ा—‘डायन’ और तब याद आई एक रात की बात । उसने गुस्से में शीला से कहा था—“तुम माँ हो !” उसने जवाब दिया था —“नहीं डायन हूँ ।”

सुधीर ने दूसरा कागज खींचा । उस चित्र में सुधीर ने देखा—

पेड़ की डाल पर घोंसला है । उसमें चिड़ा-चिड़ी और उनका चंचला है । चिड़ी बच्चे को चुगा दे रही हैं ।

उसी घोंसले के नीचे चित्र में दो चारपाइयाँ हैं । एक पर बच्चा लेटा है । दूसरे पर एक आदमी लेटा है ।

सुधीर बोला—

“मुन्ना ! यह क्या बनाया है ?”

वह विजता के अभिमान में बोला—

“अरे ! तुम समझते नहीं—देखो यह चिड़िया है न ! यह अपने बच्चे को बहुत प्यार करती है । रोज अच्छी-अच्छी चीजें लाकर खिलाती है और यह जो लड़का है वह भूखा है । इसकी माँ नहीं है । यह उसके पिताजी हैं—सो रहे हैं । यह उसे मारते हैं ।”

“मुन्ना ! और ये बिन्दियाँ सी क्या हैं ?”

“वह लड़का रो रहा है—उसके आँसू हैं ।”

“यह चित्र तुमने कब बनाया था ।”

“अभी तो बनाया है ।”

“यह लड़का कौन है ?”

“मेरा दोस्त है ।”

“कहाँ रहता है ?”

“रहता है !”

“अच्छा ।” कहकर सुधीर ने गहरी साँस ली । फिर बोला—

“मुन्ना ! आज तुम अपनी दीदी के यहाँ क्यों नहीं सोये !”

“नहीं सोया ।”

“क्यों ?”

“दीदी कहती हैं, अपने घर जाओ ।”

सुनकर सुधीर काँप गया । उसका मुँह सफेद पड़ गया । लगा जैसे धरती-आकाश सब कुछ काँप उठा है । उसकी छाती में असंख्य सुइयाँ सी चुभने लगी । जंसे-तैसं छाती दबाये बोला —“तुम्हारी दीदी ने ऐसा क्यों कहा ?”

सुनकर मुन्ना बोला नहीं । कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा फिर बोला—

“कह रही थीं—‘अब कभी यहाँ मत आना……’” कहते-कहते मुन्ना फूट पड़ा । सुधीर ने उठाकर उसे गोदी में ले लिया ।

मुन्ना अपने बाबूजी की छाती से चिपटा फूट-फूटकर रोने लगा ।
सुधीर चुप रहा । कई बार चाहा कि उसे चुपाले पर नहीं—

जो भरा है सो निकल ही जाये !

वह कुछ देर रोता रहा फिर धीरे-धीरे चुप हो गया । कुछ देर टूटती
सिसक—फिर नियमित लम्बी साँसें—सुधीर ने उसे बिछोने पर लिटा
दिया । मुन्ना अब सो गया था ।

उसके गालों के भ्रूसू सूख-सूख कर बत्ती के प्रकाश में चमक रहे
थे । सुधीर बैठा-बैठा उन्हीं चमकते भ्रूसुओं को देख रहा है । देखते-
देखते सहसा उसके अन्दर ही अन्दर पुरानी शराब की तरह का उफान
उठा । उफान—

घिनौनी पैशाचिक हिंसा !

—कि जोर से मुन्ना का गला दबादे और फिर मुक्ति—

दर्द से ! भूख से ! आये दिन के इन क्लेशों से !

अंगूर की मधुरता ही तो छुट-छुटकर एक दिन बन जाती है तीखी
शराब । उसका मुन्ना के प्रति अतिशय प्यार दुर्निवार हिंसा बनकर
उस पर छा गया ।

तभी मुन्ना जोर से चीख पड़ा—

“बाबूजी !”

सुनकर सुधीर का सारा पिंजर हिल गया । लगा जैसे उसकी
चेतना लौट आई है ।

मुन्ना उठकर अपने बाबूजी की गोदी में आ बैठा । सिसकते-सिस-
कते बोला—

“तुम मुझे अकेला छोड़ जाओगे बाबूजी !”

“कौन कहता है । मैं अपने बेटे को क्यों छोड़ जाऊँगा ?”

“नहीं, मुझे पता लग गया है—अम्मा चली गईं । अब तुम भी कहीं
चले जाओगे ।” कहते-कहते वह रुक गया फिर बोला—

“दीदी कहती हैं कि हमारे यहाँ कभी मत आना.....।”
कहकर थोड़ी देर चुप रहा फिर गुस्से में उफनता बोला—

“मैं उनकी गुड़ियां, जादू का राक्षस— गुड़ियों का घर, सब तोड़
ढालूंगा—मैं उनका सिर फोड़.....।” कहते-कहते रुक
गया।

×

×

×

×

दीदी ने मुन्ना को अपने यहाँ आने से मना कर दिया है किन्तु मुन्ना
क्या करे ? उसका मन तो नहीं मानता—जब अवश होकर एक-दो बार
पड़ोस में गया तो उससे यही कहा गया कि वह उधर न आया करे।

पिछले दो-तीन दिन से उसकी दीदी जब छत पर धूप फैल जाती है,
तो आ बठती हैं। उनका मुँह सदा सुधीर की छत की ओर होता है।
मुन्ना अब उस ओर नहीं जाता। वह सामने ही अपनी छत पर बैठा
चित्र बनाता रहता है। जब-तब छिपकर अपनी दीदी को भी देख
लेता है।

जब उन दीदी ने छत पर आना भी बन्द कर दिया तो मुन्ना दूट
गया। इन थोड़े से दिनों ही में वह सूखकर काँटा हो गया है। उसके
चेहरे का वह सहज भोलापन मिट गया है। वह बहुत कम बोलता है।
किसी बात पर जिद नहीं करता। जब भी खाने को कहा जाता है तो
चुपचाप खा लेता है। सोने को कहो तो सो जाता है। कभी-कभी दीदी
का वही चीते जैसा कुत्ता मुन्ना के पास आता है—कुछ देर बैठता है,
फिर चला जाता है।

सुधीर कमरे में बैठा लिख रहा था। तभी उसके कानों में मुन्ना का
कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—

“बाबूजी !”

“.....।”

“बाबूजी !”

“क्या है बेटा !”

“दीदी बीमार है ।”

“बीमार है ! कौन कहता है ?”

“अभी डाक्टर उनके घर से बाहर निकला था ।”

“और कोई बीमार होगा ।”

“नही बाबूजी ! दीदी बीमार है । पहिले छत पर आती थीं—वह तो चल भी नहीं पातीं—इसी से तो छत पर नहीं आती है !”

×

×

×

×

सुधीर कई दिनों से उन दीदी की बीमारी के बारे में जानना चाहता है पर उनके यहाँ जाने का साहस नहीं कर पाता । सोचता है मुन्ना को अपना इतना प्यार देकर उन्होंने उसे क्यों दुत्कार दिया ?

नही, वह उन्हें माफ नहीं कर सकता.....

सोचने लगा—

वे : नही थी मातृहीन बालक को अपनी दया का दान ! और अब दान के अभिमान को लेकर दान देना बन्द कर दिया है ।

तभी उसने मुन्ना के कण्ठ से फूटता बर्कश क्रोध भरा स्वर सुना । वह किसी से बाहर कह रहा था—

“क्यों नहीं जाता ?.....” बोल, नही जायेगा ?... ..”

सुधीर उठकर दरवाजे पर लगे पर्दे के पास आ खड़ा हुआ । उसने पर्दे के पीछे से ही देखा कि मुन्ना के सामने वही जादू का राक्षस खड़ा है । वह उनकी छत से उसे उठा लाया है ।

वह खड़ा-खड़ा उस जादू के राक्षस को अपनी दीदी के लिए ऐसी दवा लाने का हुक्म दे रहा था कि जिससे वे फौरन ठीक हो जायें—आज अभी—

वह राक्षस भी कैसा ढीठ है कि ज्यों का त्यों खड़ा है। उस से मग नहीं होता।

सहसा मुन्ना को कुछ याद हो आया। याद करके उसका चेहरा खिल गया। अपनी आँखें बन्द कर लीं और बोला—

“अच्छा ! मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। अब तो जा।”

मुन्ना कुछ देर आँखें बन्द किये खड़ा रहा। बड़े कौतूहल से अपनी आँखों से हाथ हटाये पर जब देखा कि वह अवज्ञाकारी जिद्दी राक्षस जहाँ का तहाँ खड़ा है तो मुन्ना मारे क्रोध के काँप उठा।

कांपते स्वर में बोला—“अच्छा ! ठहर !” कहता-कहता अपने कमरे की ओर घूमा। उसको कमरे की ओर आते देख सुधीर पहिले ही अपने बिछौने पर आ बैठा।

मुन्ना कमरे में आया। मारे गुस्सा और क्षोभ के उसका मुँह सूख गया था। थोड़ी देर कमरे में इधर-उधर कुछ खोजता रहा फिर मेज की दराज में से कुछ निकालकर बाहर चला गया।

थोड़ी ही देर में सुधीर को लगा जैसे कमरे में धुँआँ भरा जा रहा है। सुधीर घबरा उठा। कमरे से बाहर आया।

कमरे से बाहर छत पर आकर उमने देखा कि मुन्ना चुपचाप खड़ा है। निकट ही दियासलाई खुली पड़ी है और एक ओर जल रहा है—

—वह जादू का राक्षस ! जो ढीठ, जिद्दी और अवज्ञाकारी था।

—जो उसकी-दीदी के लिए उड़कर दवा नहीं लाया था।

सुधीर को मुन्ना ने नहीं देखा। वह वापस कमरे में लौट आया। जिस कापी में लिख रहा था उसे हटाकर एक ओर रख दिया और चुपचाप लेट गया।

सोचने लगा—

मुन्ना को किसी होस्टल में भेजे बिना काम नहीं चलेगा। किन्तु

साथ ही उठा वही सनातन प्रश्न—रूपया ?

निश्चय किया वह दिन-रात लिखेगा ! वह मुन्ना को किसी अच्छे होस्टल में भेज देगा—तभी मुन्ना अन्दर आया । उसका मुंह मारे दुःख और बलेश के पीला पड़ गया था ।

उसके चेहरे पर ऐसा भाव था—जब कोई अपने अति प्रियजन को अपने ही हाथों से चिता में फूँककर लौटता है ।

मुन्ना आकर सुधीर के पास लेट गया । सुधीर सोचने लगा—

‘दीदी’ नाम की उस नारी को कैसी माटी से बनाया है सिरजनहार ने ? जो किसी दिन इस नन्ही आत्मा का स्पन्दन बन गई थी, जिसने सुधीर में नये प्राण फूँके थे, सो उसे हो क्या गया है ? लेकिन नहीं—पड़ोस में जादू की नगरी है, जिसकी कोई बात उसकी समझ में नहीं आती ।

वहाँ एक ऐसा परदा है—

जिसके दूसरी ओर गति है, हलचल है, जिसे वह सुन पाता है, अनुभव करता है पर देख नहीं पाता—समझ नहीं पाता ।

ऐसी है वह—

जादू की नगरी ! इन्द्रजाल !!

×

×

×

×

अब मुन्ना की किसी से नहीं पटती । जब कभी वह गली में खेलने जाता है तो थोड़ी ही देर में किसी को पीटकर, किसी से पीटकर लौट आता है । आजकल वह जरा-जरा सी बात पर चिढ़ जाता है । समझ नहीं पाता—कहाँ जाये ? क्या करे ?

—इतनी बड़ी दुनिया में उसका अपना ऐसा कोई नहीं है जिसके साथ जाकर खेले ! जिससे अपने मन की बात कह पाये—

एक दिन जब वह अपने बाबूजी के पास लेटा था तो बोला—

“बाबूजी !”

“हाँ बेटा !”

“मुझे एक बहिन ला दो ।”

“बहिन ?”

“हाँ बाबूजी !”

“लेकिन—लेकिन—बहिन कहाँ से आयेगी ?”

“कहाँ से आती है बहिन ?”

सुनकर सुधीर सहसा ऐसे जाल में फँस गया कि किसी ओर से छुटकारा नहीं और मुन्ना उसका हाथ भकभोरता पूछे जा रहा था—

“बताइये बाबूजी ! बहिन कहाँ से आती है ?” मैं कहाँ से आया था ? बच्चे कहाँ से आते हैं ?”

थोड़ी देर सुधीर चुप रहा । सुधीर को बच निकले की आशा हुई बोला—

“तुम इतना भी नहीं जानते ?”

उसकी विज्ञता के अभिमान को चोट लगी । बोला—

“जानता क्यों नहीं हूँ ?”

‘बच्चे कहाँ से आते हैं ?’ इस रहस्य के सम्बन्ध में न जाने कहाँ-कहाँ से किन-किन मुखों से, कैसी-कैसी बातें उसने सुन रखी थी । अपने उसी संचित ज्ञान के आधार पर बोला—

“बच्चे अस्पताल से आते हैं—चिड़ियों के घोंसलों से आते हैं—पानी बरसता है तब आसमान से बरस पड़ते हैं—”

बीच ही में सुधीर बोला—

“अच्छा ! अच्छा ! !”

मुन्ना अभिज्ञता के अभिमान में अपनी बहिन की माँग ही भूल गया और सुधीर ने संतोष की सांस ली !

सुबह का समय है । सब ओर घुन्ध और कुहरा छा गया है । सारा कमरा न जाने कैसी गीली गन्ध से भर गया है । सुबह ही सुबह जब मुन्नी की आँख खुली तो देखा जाड़े में ठिठुरती खिड़की के शीशों पर जमा कुहरा सूरज की किरणों से पिघल-पिघलकर ढलता जा रहा है ।

सोचने लगा—

यही है उसका अपना आज का जीवन ? जो दिन-रात बूँद-बूँद गला जा रहा है ।

कई दिन से उसकी छाती में दर्द और खाँसी है । इसलिए मुन्ना को दूसरे बिछौने पर लिटाता है ।

उसने मुड़कर मुन्ना के बिछौने की ओर देखा । देखते ही न जाने कैसी आशंका से भर उठा । मुन्ना का विस्तर खाली पड़ा था । वह बिछौ पर नहीं था ।

बिछौना खाली देखकर उसे पिछली रात की बात याद आई । सोने से पूर्व मुन्ना ने अपना बनाया हुआ एक चित्र दिखाया था—

चित्र में बिड़ी का बच्चा बड़ा होकर अपनी चिड़ियों के पीछे फुदकता घूम रहा था और वह लड़का जिसकी माँ कहीं चली गई है, जिसका पीटने वाला बाप पास ही सो रहा है । सो वह लड़का अब बिछौने पर नहीं है ।

मुन्ना ने दबी साँस छोड़ते हुए बताया था कि वह लड़का अब मर गया है ।

याद आते ही मारे आशंका के उसके प्राण सूख गये ।

मोटा कम्बल और चादर एक ओर फेंक कर दांत किटकिटाने वाले जाड़े में एक हाथ से छाती दबाये वह कमरे से बाहर आ गया ।

सीढ़ियों से उतर कर इधर-उधर सड़क पर मुन्ना को देखता रहा जब कहीं भी दिखाई नहीं दिया तो घबराता-सा पड़ोसियों की छत पर जा पहुँचा ।

सुधीर ने देखा मुन्ना उस ओर की पहिली मीठी पर चुपचाप बैठा है और पास लेटा है वही चीते जैसा विशालकाय कुत्ता । मुन्ना के नन्हें हाथ अनजाने ही उस कुत्ते के कानों से खेल रहे थे ।

वहाँ बैठे मुन्ने को देखकर वह रुक गया । कुछ देर खड़ा रहा । फिर दबे पाँव अपने कमरे में लौट आया ।

मुन्ना जहाँ का तहाँ चुपचाप बैठा था । तभी दीदी के कमरे से डाक्टर निकला । उसका चेहरा गम्भीर था । कमरे से बाहर निकलते-निकलते वह गोगी के खाने-पीने के बारे में आदेश-निषेध देता नीचे सीढ़ियों पर उतरने लगा ।

सहसा मुन्ना काले सँपोले की भाँति फुंकारता उठकर खड़ा हो गया । बोला -

“दीदी को जल्दी ठीक क्यों नहीं करते ?” इस तरह बोलते देखकर डाक्टर के चेहरे की गम्भीरता मिट गई । वह धीरे से मुस्कराया ।

हम बड़े अवगार यही गलती कर जाया करते हैं । बच्चे के दुर्निवार क्रोध और गहरे से गहरे दुःख को कैसे भी हम समझ ही नहीं पाते !

बच्चे के उस आवेग को हम उसका बचपन, भोलापन समझकर हँस भर देते हैं और हमारी उस हँसी में कहाँ दवा होता है अपने बड़प्पन का अभिमान ।

हमारी यह हँसी, उद्वेग भरे बच्चे में आग-सी लगा देती है ।

डाक्टर के चेहरे पर सहसा फैलती मुस्कान को देखकर मुन्ना मन ही मन जलता-भुनता बोला—

“हँसते हो ? शर्म नहीं आती !”

मुनकर डाक्टर का मुँह मारे गुस्से के तम-तमा गया ।

तभी कमरे के अन्दर से किसी का दूटता कमजोर कण्ठ-स्वर सनाई पड़ा !

“अरे कोई है ? इसे पकड़कर उधर छोड़ आओ ।”

लेकिन सुना किसने ? उसकी छोटी बहिन वन्दना दूर के कमरे में बैठी पानी गर्म कर रही थी । मुन्ना बाहर से खड़ा-खड़ा गुराया—

“कह दिया पकड़कर उधर छोड़ आओ । आये कोई इधर ! सिर फोड़ दूँगा !! ... ।

डाक्टर ने नीचे उतरने के लिए पैर बढ़ाया । तभी मुन्ना जोर से चीख पड़ा—

“दीदी को ठीक करके जाओ नहीं तो मे..... ।”

मुनकर डाक्टर अनायास ही फिर हँस पड़ा और हँसते-हँसते सीढ़ियों से उतरने लगा ।

डाक्टर की वह हँसी !

लगा जैसे पेट्रॉल की छोटी टंकी में अचानक आग भभक उठी हो ।

मुन्ना सारी ताकत लगाकर चिल्लाया—

“राँबर छू ! राँबर छू !!”

अपने छोटे मालिक का हुक्म पाते ही वह विशालकाय जानवर मुँह फाड़े उछला और डाक्टर को जा दबोचा ।

तभी वे रुग्णा जैसे-तैसे दीवाल का सहारा लिये बाहर आईं और बोलीं—

“कम बैक ! गेबर कम बैक !!

कुत्ता पूँछ हिलाता वापस लोट आया ।

× × × ×

सुधीर थोड़ी हो देर पहिले मुन्ना को खोजता बाहर निकल गया था। जब लौटा तो खाँसी का ऐसा दौरा आया कि खाँसते-खाँसते अचेत-सा हो गया ।

जब होश आया तो देखा कि बिछीने पर गाढ़ा काला खून पड़ा है । सुधीर समझ ही नहीं पाया कि यह खून बिछीने पर कहाँ से आया । अनजाने ही में उसका हाथ मुँह पर गया और हाथ भी खून में सन गये ।

खून को देखकर उसके चारों ओर अँधेरा-सा छा गया । उसे समझते देर नहीं लगी कि उसे भयंकर टी० बी० हो चुका है ।

जब थोड़ा स्वस्थ हुआ तो उठा । मुँह धोया, चादर बदली, और शान्त होकर लेट गया । थोड़ी देर बाद कमरे में मुँह फुलाये मुन्ना आया । कुछ देर मुँह फुलाये खड़ा रहा, फिर बोला—

“सब दीदी की बात मानते हैं । जादू का राक्षस भी उनकी बात मानता था—राँबर भी उन्ही की बात मानता है । मैंने राक्षस को जला दिया—मैं राँबर को भी मार डालूँगा..... ।”

सुधीर बोला—“तू भी तो दीदी की ही बात मानता है ।”

“मैं नहीं मानूँगा—अब वह भी मुझे पीटती..... ।” कहते-कहते मुन्ना दौड़ कर अपने बिछीने पर जा पड़ा और लगा फूट-फूट कर रोने । अन्दर ही अन्दर न जाने कैसे विषाद-परिताप भाप की तरह उफन-उफन कर आते हैं और आँसू बन-बन कर बह जाते हैं ।

मुन्ना रोओ ! रोओ !! चीख चीखकर रोओ !!! बिलख-बिलख कर रोओ !

तू जिस माटी से बना है, वह है ही ऐसी कि जिसे सदा रोना ही

पड़ता है और यदि आँसू रुके तो अन्दर ही अन्दर धधक उठती है क्रान्ति की ज्वाला ! पेशाचिक हिंसा !! और फिर अन्त होता है—फाँसी !!

ऐसी माटी की मूर्ति का यही होता है अन्त ! या तो अपने आँसुओं से स्वतः गल जाती है या फिर टूटती है पूँजीवादी शासन के हथोड़े से !

—आँसू ! या फाँसी !!

यही होता है ऐसी माटी का भविष्य !

सुधीर लेटा-लेटा देख रहा था अपने भविष्य को ! और उसमें लिपटे मुग्धा के भावी क्लेश और दुख-दर्द को !

चुपचाप लेटा-लेटा उस रोते मुग्धा को देख रहा था । देखते-देखते न जाने कैसे-कैसे प्रश्न आ आकर टकराने लगे ।

सोचने लगा—

उसने मुग्धा का भविष्य बनाना चाहा था और वही बनाते-बनाते उसका वर्तमान भी मिटा डाला है । क्या यही है वह गौरव, जिसके लिए वह आज तक जीता आ रहा है ?

यदि वह अपनी इन्सानियत का इतना बड़ा दावा न करता तो वकील, डाक्टर, कुछ भी होता ! पूँजीवादी सरकार का सिपाही ही, मात्र हस्ताक्षर जानने वाला किसी सेठ का दरबान ही !

—पूँछ दबाकर खीसे काढ़ने वाला कुत्ता ही !

तभी अन्दर से एक शब्द-हीन स्वर गूँज उठा—

“नही, मुझे यह कुछ भी नहीं बनना । मुझे लड़ना है, लड़ते रहना है, उस युग से, युग की उस व्यवस्था से; जो हमारी इन्सानियत छीनकर हमें हैवान बनना सिखाती है । यही है हमारा सनातन संघर्ष ! युग-युग से चला आता देव-दानव द्वन्द्व !!

तभी उसे याद आया अपने मुँह से निकला काला खून !

सोचने लगा—

दीये की जिस बाती को आज तक जलाता आ रहा था सो अब बुझने-बुझने को हो रही है। लेकिन नहीं ! उसे तब तक जलते जाना होगा जबतक कि पास ही रक्खा भपकता वह नन्हा दीया तूफानों से उलझने की शक्ति नहीं पा लेता।

उस नन्हें दीप को कही ऐसे ठौर ठिकाने सँभालकर रखना होगा कि आँधी तूफान उसे बुझा न पाये। लेकिन कहाँ है वह ठौर ठिकाना ?

—भइया ? पापा ?

उन प्रश्न—चिह्नों के आगे बड़े-बड़े आकारहीन अक्षरों में लिख गया—

“नहीं ! नहीं !!”

तभी पड़ोसियों का नौकर आया। बोला—

“बीबी जी ने मुन्ना को बुलाया है।”

सुनकर सुधीर के तन बदन में आग लग गई। सहसा आये उस उद्वेग को दबाकर बोला—

“जाकर अपनी बीबी जी को बोल देना कि मुन्ना खिलौना नहीं है। जब चाहा तब खेल लिया और जब चाहा तोड़ दिया।”

सुनकर नौकर चला गया। कुछ देर मुन्ना चुप पड़ा रहा। कई बार उसने अपने बाबूजी की ओर देखा ! लेटा-लेटा कुछ सोचता रहा। अन्त में चुपचाप उठा और कमरे से बाहर हो गया। बाहर ही से उसका रुँधा कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—

“बाबूजी ! मे जा रहा हूँ।”

सुनकर सुधीर के अचरज का ठिकाना नहीं रहा। सोचने लगा—

कैसा है यह जादू ! अभी उन्हीं से पिटकर आया था और फिर चल दिया उन्हीं के पास, लेकिन क्यों ? क्यों ?

सुधीर ! सोचो, सोचते रहो। हम बड़ों की आँखों पर ‘अहं’ का

ऐसा ही ऐनक होता है कि जिससे देख पाते हैं मात्र बाहरी व्यवहार और उसी को लेकर सदा रचा करते हैं अपनी धारणाओं की ऊँची प्राचीरें ! जिन्हें भेद कर 'सत्य तक' कभी हमारी दृष्टि पहुँच ही नहीं पाती किन्तु बच्चों के पास होती है एक ऐसी सहज अन्तर्दृष्टि कि—

ऊपरी व्यवहार के शैवाल को भेदकर वे चट देख लेते हैं कि—

कहाँ घृणा की गन्द भरी कीचड़ है और कहाँ बह रही है स्नेह की निर्मल जल-राशि !!

उसी दिन साँझ को मुन्ना के हाथ उसे छोटी सी कागज की चिट मिली, उसमें लिखा था—

सुविधानुसार दर्शन दीजिए ! आज ही—अनुग्रहीत हूँगी ।

—मीरा

यातना !

..... चाहता हूँ कि—

वे कायर-भीरु आत्माएँ जागें, जो क्लेश सहते-सहते जड़ हो गई हैं, जिनका अभिमान मर गया है । वे नफरत करें उस वैभव से, शान-शौकत से, जो इन्सानियत की लाश पर पनपा करती है ।

कि वे जाने—

यातना गौरव है !

कि—

क्लेश ही है इन्सानियत का अभिमान !!

रात के आठ बजे होंगे । सुधीर को पता ही न चला कि कब साँभ आकर चली गई और कब रात की अँधियारी ने उसके कमरे को ग्रस लिया ।

सुधीर अपनी खिड़की पर ठोड़ी टिकाये चुपचाप आकाश की ओर देख रहा है ।

खाँसी का दौरा आता है । छाती दबाकर खाँस लेता है और फिर शांत होकर उभी ओर देखने लगता है ।

दूर आकाश में बार-बार बिजली चमक उठती है, जैसे बादलों के पिंजर में से रह-रहकर बाहर निकल आने के लिए प्राण छटपटा रहे हैं ।

उस ओर देखते-देखते न जाने कौसी गहरी उदासी उस पर छा गई । उसे लग रहा है जैसे वर्षों से वह अन्दर ही अन्दर मर चुका है । जैसे सालों से उसके प्राण भी इसी तरह उसका पिंजर तोड़कर बाहर निकल आने के लिए छटपटा रहे हैं, पर वह कैसे ही जिये जा रहा है ! जिये जा रहा है !!

वह जी रहा है मुन्ना के लिए ! लेकिन नहीं—

मुन्ना तो उस कामना का मात्र प्रतीक है—उद्देश्य नहीं !

और उद्देश्य ?

उद्देश्य है कि—

वह मिटने से पहिले लिख जाना चाहता है अपने उन क्लेशों की याद—वे दंश जो उसने जन्म लेने के बाद इस धरती पर सहे हैं ! जिन अन्याय और यातनाओं के बीच उसने जिन्दा रहने की लड़ाई लड़ी है !

—कि जिसे पढ़कर वे कायर भीरु आत्माएँ जागें जो क्लेश सहते-सहते जड़ हो गई हैं, जिनका अभिमान मर गया है।

—कि वे जाने यातना गौरव हैं ! क्लेश ही है इन्सानियत का अभिमान !!

—कि कोई अपनी अन्तिम सांस तक इसी गौरव, इसी अभिमान को लेकर किसी समय इस धरती पर जीता रहा था।

—कि वे नफरत करें उस वैभव से—शान-शौकत से जो इन्सानियत की लाश पर पनपा करती है।

तभी उसे सहसा याद आई मुन्ना की दीदी की वह चिट।

थोड़ी देर वह चुपचाप बैठा कुछ सोचता रहा फिर उठा और चादर से अच्छी तरह बदन ढाँपकर खड़ा हो गया।

मुन्ना सो रहा था। उसने अच्छी तरह मुन्ना की रजाई के किनारे दबा दिये।

जब सीढ़ियों से उतर कर नीचे पहुँचा तो वह कुत्ता एक बार जोर से भौंका फिर गुराया और चुप होकर जहाँ का तहाँ बैठ गया।

उसी समय अन्दर वाले कमरे से वही चिर-परिचित कण्ठ - स्वर सुनाई पड़ा।

—“वन्दना ! देख तो कौन है ?” फिर दबे स्वर में—

“अरी सुन ! वही आये हैं। जा लीवा ला। सुन तो ! वह कुर्सी उधर रख दे।”

उसके बाद एक छाया-सी बाहर दालान में आ खड़ी हुई।

छाया बोली—

“आजाइये !”

सुधीर कमरे में जाकर खड़ा हो गया। वह धीमे स्वर में बोली—

“वहाँ उधर कुर्सी है। बैठ जाइये।”

सुधीर उनके बिछोने से थोड़ी दूर पड़ी कुर्सी पर चुपचाप बैठ गया। बैठते ही उसे याद आया वह उत्तर जो नौकर के हाथ आज ही कहला भेजा था कि—

—मुन्ना खिलौना नहीं है, जब चाहे खेल लिया। जब चाहा तोड़ दिया—

याद आते ही मारे आत्मग्लानि के धरती में गढ़ गया। कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा। उसने सिर उठाया। तब तक वन्दना कमरे से बाहर जा चुकी थी।

उसने देखा—

कमरे में एक ओर पलंग है। पलंग के सिरहाने रेडियो सेट है। पास ही एक मेज है। उस पर एक किताब रखी है। एक ओर है मोटी कापी—कलम—

सुधीर ने सहमते-सहमते उन दीदी की ओर देखा। वे अधखुली आँखों से सामने की दीवाल की ओर देख रही थीं।

उसने दीवाल की ओर दृष्टि घुमाई—फिर नीचे फर्श पर तथा अपने चारों ओर जो कुछ उसने देखा सो देखकर लगा जैसे वह किसी मंदिर में आ बैठा है।

कमरे के ठीक बीच में श्वेत चौकी है। उसी के पास अल्पना बनी है! उस पर एक चमकता ताम्बे का थाल है। थाल में सजाये गये हैं जूही के फूल!

जूही के वे सफेद फूल थाल के पानी में लहलहा रहे हैं। एक कोने में रक्खा है मंगल-कलश, जिस पर सजा है अगरदान! अगरबत्तियाँ जल रही हैं। उनसे नीले हरे रंग की घूमिल लहराती लहरें सी उठ रही हैं।

कमरे में बिजली का प्रकाश नहीं है। मंगल-कलश के पास ही दीपदान है। दीपदान के हल्के उज्जीते में अगरबत्तियों की लहराती लहरें

दुनिया से दूर किसी मीठे स्वप्न की सी सृष्टि कर रही थीं ।

तभी सुधीर ने उनकी ओर देखा । इस बार उसने पहिली बार थोड़ी देर तक उसी ओर अपनी दृष्टि स्थिर रखी ।

आह ! उनका चेहरा कितना श्वेत था ! चांदनी जैसा शुभ्र !! माल के पास ग्रीवा की ओर जाती नाड़ियाँ तक दिख रही थीं ।

उनकी अधखुली आँखें और धीमी-धीमी साँस की आवाज से लग रहा था जैसे प्रतिपल प्रतिक्षण जो बीत रहा है वह उन्हें जीवन से छीन कर चिर-समाधि की ओर बहाये लिये जा रहा है ।

उसी समय कमरे में किसी की छाया-सी पड़ी । लेकिन छाया अन्दर नहीं आई । बाहर से ही कहा—‘दीदी ! दीदी !!’

सुनकर दीदी काँप गईं और वह छाया पुछ गई । उन्होंने पूरी आँखें खोल दी । कितनी शान्त ! कितनी सहज थी वे दो आँखें !! जैसे स्नेह और ममता के दो अतल-ताल !!

क्षीण कोमल स्वर में बोलीं—“मैंने दवा ली है । बार-बार बेहोशी सी आ जाती है ।”

सुधीर उठते-उठते बोला—

“अच्छा, तो मैं चलता हूँ फिर कभी आ जाऊँगा ।”

“थोड़ा ठहरिये ! अब दस-पाँच मिनट होश में रहूँगी ।”

कुछ देर चुप रहीं फिर बोलीं—“आप मुझ से नाराज है ?”

“नहीं तो ।”

“देखिये, आप जानते नहीं । मैं उसे बहुत प्यार करती हूँ । इसीलिए इधर नहीं आने देती ।”

सुनकर सुधीर को मन-ही-मन अचरज हुआ—प्यार ! फिर यह ! दुराव क्यों ?

वे बोलीं—

“डॉक्टर ने मुझे टाइफाइड बताया है । छूत की बीमारी है—इसी-

लिए उसे इधर नहीं आने देती। वह आता है तो साधा मेरे पास बिछोने पर ही बैठना चाहता है।”

सुनकर मारे आत्मग्लानि के उसकी दबी उसाँस निकल गई ! साथ ही खाँसी का दौरा आया। अपनी सारी शक्ति से उसे दबाकर बोला—

“जाता हूँ। फिर आऊँगा। आज के उस जवाब के लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ।”

“ऐसा मत कहिए। मुझे बलेश होता है। उठते-उठते उसने कहा—
“अच्छा नमस्कार !”

“नमस्कार !”

× × × ×

सुधीर उन दीदी के यहाँ से लौटकर जब अपने बिछोने पर आ लेता तो लगा जैसे जादू की नगरी के जिन रहस्यों को वह आज तक नहीं खोल पाया है, उनके सूत्रधार को देखकर वह उनसे भी बड़ी उलझन में फँस गया है। उनके बारे में तरह-तरह की बातें सोचता बड़ी रात गये तक जागता रहा।

थोड़ी देर के लिए भी उसे नीद आई थी। जब जागा तो शुक्रतारा उग आया था।

शुक्रतारा आकाश में जगमगा रहा था। उसे लगा जैसे वह असीम आकाश एक दीवाल है, जिस पर झिलमिलाता वह दीपदान जल रहा है। और वे झपकते तारे मानो मीरा की अघखुली आँखें हैं। जैसे सारे आकाश में व्याप्त है मात्र मीरा ! और अब वह दीपदान बुझता जा रहा है—सहसा सुधीर को एक आशंका ने ग्रस लिया—

वह भी तो बुझ सकती है !

× × × ×

उस दिन प्रकाशकों से रुपये लेकर डाक्टर के पास गया। जब घर लौट

तो दोपहर हो गया था। दवा की एक खुराक पी चुका था। अब खाँसी कुछ कम थी। दूसरी खुराक पीकर बिछौने पर लेट गया।

मुन्ना कमरे में नहीं था। सुधीर के तकिये से दबी एक चिट रक्खी थी। सुधीर ने उसे देखा। लिखा था—

“प्रतीक्षा कर रही हूँ। भोजन इधर ही करिये—मीरा”

वह उठा। स्नान घर में गया। बदन पर पानी डालते ही उसे लगा कि ज्वर है। उसने नहाया नहीं, गीले तौलिए से बदन पोंछकर चला आया। कपड़े बदलकर पड़ोसियों की ओर चला गया।

रास्ते में उसे मुन्ना मिला। उसने दौड़कर अपने बाबूजी की अंगुलियाँ धाम लीं। खुशी में एकबार धरती से थोड़ा ऊँचा उछलकर बोला—

“बाबूजी ! दीदी मान गई !!”

“क्या मान गई ?”

“दीदी कहती है कि मैं उनके घर जा सकता हूँ। बस, उनके कमरे में मत जाओ। हाँ, कभी-कभी दरवाजे पर खड़े हो सकते हो।” कहता-कहता वह सुधीर को घसीटता दीदी के घर ले गया।

नीचे जाकर देखा। उन दीदी के दरवाजे पर मुन्ना की छोटी-सी मेज कुर्सी लग गई है। मेज पर रंग, ब्रुश, पानी की प्याली, कागज और एक अधूरा चित्र रक्खा है।

आज कितने दिनों बाद सबेरे से दोपहर तक मुन्ना इस घर ही में रहा है। इस बीच लगता है जैसे वह बिल्कुल बदल गया है।

न जाने उसके चेहरे की वह रूक्षता और कठोरता कहाँ चली गई। वह सदा की भाँति सहज हो उठा है।

मुन्ना ने उसे दीदी के द्वार पर ले जाकर खड़ा कर दिया फिर बोला—

“दीदी !”

दीदी ने आँखें खोल दीं।

सुधीर ने कुर्सी पर बैठते-बैठते पूछा—“कैसी तबियत है ?”

“ठीक हूँ । “कहते-कहते वे धीरे से मुस्काईं ।

लगा जैसे उस धीमी मुस्कान से कमरे का कण-कण दीप्त हो उठा है । सुधीर मन्दिरों में गया है । घंटों वहाँ बैठा है । वहाँ उसे कभी कोई विशेष बात नहीं लगी । पर यहाँ आकर जब बैठता है तो लगता है जैसे उसके अन्दर के सब दर्द—सब क्लेश मिट जाते हैं । न जाने कैसा सुख —कैसी आनन्दमयी सिहरन का अनुभव होता है ।

वे धीरे से मुस्काती बोलीं—

“जिनसे आपकी नहीं बनती, वे अब यहाँ नहीं हैं ।”

“कोन ?”

“मेरे पापा !” कहकर वे फिर मीठा-मीठा मुस्कराईं ।

“हाँ, मुन्ना ने मुझे बताया था । कब लौटेंगे ?”

“आने के बारे में कुछ नहीं लिखा ।”

“वह क्यों गये ?”

“मेरी माँ—माई स्टेप मदर इज् देअर”

“आपने अपनी बीमारी के बारे में लिख दिया ?”

“नहीं”

“क्यों ?”

“लिख देती तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता ।”

क्या मतलब ?”

“वे आते नहीं ।”

“क्यों ?”

“अब वे नहीं आयेंगे” कहते-कहते उनकी आँखें छल-छला आईं ।

थोड़ी देर कमरे में सन्नाटा रहा ।

सुधीर बोला—

“मन्तू उन्हीं विमाता की लड़की है?”

“जी”

“लेकिन आप अकेली.....।”

सुनकर वे चुप रही फिर लम्बी उसाँस छोड़ती बोलों—

“अकेली क्यों ? वन्दना है.....और.....और.....

आप है।”

सुधीर को लगा जैसे अचानक पैर से लेकर माथे तक की नसें किसी आनन्दमयी सिहरन से झनना-झनना उठी हैं।

कुछ देर तक कोई भी नहीं बोला, फिर वे ही अर्थपूर्ण धीमी हँसी हँसती बोलों—

“मेरी बहुत-सी बातों से आपको अचरज होता होगा।”

सुनकर सुधीर के अन्दर की कुंठा, मन की गाँठ सहसा ढीली पड़ गई। बोला—

“अचरज नहीं, मुझे तो इन्द्रजाल लगा था”

सुनकर वह धीमी-धीमे मुस्कराती रहीं फिर बोलों—

“किस बात पर अचरज हुआ था ?”

“एक बात नहीं थी.....बहुत सी.....।

बीच ही में द्वार की ओर देखकर बोलों—

“आ जा.....अन्दर आ जा।”

नीकर काँच की बड़ी प्लेट में कुछ फल-फलेरी लाया और सामने की मेज पर रखकर जाने लगा।

तभी बोलों—

“सुन ! मेज से यह हरा मेजपोश हटा दे ! वह नीला वाला बिछा दे। कितनी बार कहा पर सुनता ही नहीं !

सुधीर कुछ देर उनकी ओर देखता रहा। फिर बोला—

“क्या आपने यह नीला मेजपोश...!” बीच ही में बोलों—

“हाँ, और ये पर्दे भी ‘‘।”

तब उसे ध्यान आया कि पिछली रात दरवाजों पर हरे पर्दे थे। अब उन्हें हटाकर वहाँ नीले पर्दे लगा दिये गये हैं।

वे अपनी मीठी-मीठी मुस्कान बिखेरती बोलीं—

“आपको नीला रंग बहुत पसंद है। है न ?”

सुनकर वह मुँह बाये कुछ देर उनकी ओर देखता रहा फिर दृष्टि हटाकर मेज पर रखी फलफलेरी की तश्तरी की ओर देखने लगा।

वे बोलीं—

“आप खाते क्यों नहीं ? खाइये।”

“और आप……।”

“डाक्टर ने मना किया है।”

“क्या खाती है ?”

“कुछ नहीं—टाइफाइड में कुछ भी नहीं खाया जाता।”

“तब कम बोलिए।”

“कम ही तो बोल रही हूँ।” कहकर वे चुप हो गईं।

सुधीर को विचार आया—हे भगवान् ! कैसी मायामयी है यह ! कितने रहस्य बिखरे पड़े हैं इनके चारों ओर। मुझे पर्दों का, मेजपोश का कौन-सा रंग पसंद है, यह तक जानती हैं।

सेव का एक टुकड़ा मुँह में रखा—फिर सारा साहस बटोरकर बोला—

“आपको मेरी रुचि-अरुचि के बारे में इतना सब कैसे मालूम है ?”

सुनकर वे फिर थोड़ी-सी मुस्कराई। और बोली—

“बता दूँगी तो फिर अचरज में कैसे डाल पाऊँगी।” कहकर चुप हो गईं। धीरे-धीरे उनका चेहरा गम्भीर होता गया। फिर बोलीं—

“अब मुन्ना की माँ कहाँ है ? कुछ खबर मिली।”

इस बार उन्होंने जो प्रसंग छेड़ा, उसे सुनकर सुधीर के हृदय में शूल-सा चुभ गया।

वे बोलीं—

“अच्छा रहने दीजिये.....लेकिन ऐमे कब तक चलेगा ..” इसे कहीं होस्टल में भज दीजिये।”

“हाँ, यही सोच रहा हूँ।”

थोड़ी देर कमरे में सन्नाटा रहा।

बोलीं—

“आपने जो सहा है सां सब में जानती हूँ।”

“आप—.....।”

“मैं ही क्या बहुत से जानते हैं।”

“बहुत से लेकिन कैसे ?...”

सुनकर उनकी आँखें सहसा भर आईं पर बोली नहीं। थोड़ी देर चुप रहीं फिर बोलीं—

“आपकी नई पुस्तक मैंने पढ़ ली है। आज वन्दना पढ़ रही है।”

“कैसी लगी ?”

“कैसे बताऊँ ?”

“क्यों ?”

“आपकी किताबें पिछले कई वर्षों से मैं पढ़ती आ रही हूँ। जब पहिले-पहिल मैंने आपका ‘सांध्यदीप’ पढ़ा था तो बहुत दिनों तक मुझ पर छाया रहा था। शायद वह आपकी पहिली रचना थी.....उसकी भूमिका में तो यही लिखा था।.....उसे पढ़कर मैंने पत्र भी लिखा था। पता नहीं आप तक पहुँचा या नहीं।”

“पत्र तो मुझे मिलते ही रहते हैं। मिला होगा। [कुछ याद नहीं आता।”

“मैंने स्विटजरलैंड से लिखा था।”

“सुनते ही लगा जैसे अन्दर-ही-अन्दर कहीं बिजली चमक गई है। सोचने लगा—तो यही है वह आत्मा, जिसने कई बार उस झूबते को उबारा है—जो उसका आदर करती है, स्नेह करती है—जो उसकी बन्द पलकों में श्वेत प्रतिमा बनकर रोम-रोम में छा जाती थी।

उसने काँपकर पलकें बन्द कर ली। पलक बन्द करते ही उस अन्धकार में वही श्वेत प्रतिमा साकार हो उठी। फिर लगा जैसे वही प्रतिमा धीरे-धीरे श्वेत प्रकाश-सी बिखरकर पास ही बिछीने पर लेटी मीरा में जा समाई है।

सुधीर ने आँखें खोलीं। उसे लगा जैसे अभी-अभी सपना देख कर जागा है।

तभी वे भुवन-मोहिनी हँसी हँसती बोली—

“क्या सोच रहे थे ?”

शर्माता-सा बोला—“कुछ नहीं।”

कुछ देर कोई भी न बोला। अपने-अपने में झूबे रहे। तब मीरा ही बोली—

“सुनिये ! जब से मैंने आपकी पुस्तकें पढ़ी हैं तब से…”

कहते-कहते उनका गला भर आया, कुछ देर चुप रही फिर बोली—

“…तब से लगता है जैसे अपनी इन पुस्तकों में न जाने कैसे किसी अदृष्ट शक्ति के सहारे मेरा अतीत ही अंकित कर लिया है और अब तो लगता है जैसे जो घटने वाला है, वह भी आपने पहिले से ही अपनी इस नई कृति में चित्रित कर लिया है !”

सुनकर सुधीर ने पलक बन्द कर लिये। बँठा-बँठा कुछ सोचता रहा। फिर बोला—

“मीरा जी ! जो सनातन है, शाश्वत है वह सदा, सब ठीर, सबके साथ एक ही प्रकार से घटता है। इसमें अचरज की कोई बात नहीं है” कहते-कहते सुधीर ने बात को दूसरी ओर मोड़ा। बोला—

“पिताजी से भगड़ा क्यों हुआ था ?”

बोलीं—“पिताजी की सारी शिक्षा-दीक्षा योरुप में ही हुई है पर भारतीय शक्की मिजाज से उन्हें छुटकारा नहीं मिला ।”

“आप पर शक करते हैं !”

“हाँ, उस दिन जो जादू के राक्षस से खीर मँगवाकर भेजी थी, उसी बात पर.....” कहते-कहते वे मुस्काने लगी ।

धीरे-धीरे सुधीर का चेहरा गम्भीर होता गया । बोला—“सच, न जाने कंसे अशुभ क्षणों में मैंने इस घरती पर पैर रक्खा होगा । जिसके सम्पर्क में भी आता हूँ, वही संकट में पड़ जाता है ।”

“ऐसा मत सोचिये सुधीर बाबू ! भगड़ा हमारा पहली बार ही नहीं हुआ । वे मुझे रुपये के लोभ में अपने किसी शराबी डाक्टर के हाथ बेच देना चाहते हैं । वे भारी कर्ज में दब गये हैं और उस अघ-बूढ़े डाक्टर ने न जाने ऐसा क्या देखा है मुझमें कि लाखों रुपये देकर भी मेरा सोदा कर लेना चाहता है । इस बार मेने पिताजी को साफ मना कर दिया है । पर जानती हूँ कि.....” कहते-कहते वे चुप हो गईं । उनका गला रुँध आया था । कुछ देर चुप रहकर बोलीं—

“वह डाक्टर बड़ा मायावी है । एकबार जब उसने तय कर लिया है तो बिना अपनी बात पूरी किये मानेगा नहीं । शायद इसीलिए यह शरीर मिटा जा रहा है कि ऐसा-वैसा कुछ घटने से पहले ही मुक्त हो जाऊँ ।”

“आप कहें तो मैं कहीं.....”

“नहीं सुधीर बाबू ! शादी से मुझे नफरत है ।”

“क्यों ?”

“सो नहीं जानती पर है ऐसा ही—मेरे लिए शादी का अर्थ है अपना विक्रम—अपने प्राणों का विक्रय..... अपनी रुचि—

अरुचियों का विक्रम.....शरीर आत्मा का विक्रय.....।”

“ऐसा आप क्यों सोचती हैं ?”

“सुधी बाबू ! मेरी माँ वैष्णव भक्त थी । इस लिए देश विदेश घूम कर भी मैं अन्दर से थोड़ी भी न बदल पाई । न जाने क्या सोचकर उन्होंने मेरा नाम ‘मीरा’ रक्खा था ।”

कहते-कहते थोड़ी देर चुप रहیں फिर बोलीं—“लगता है मेरी माँ ने अपनी कामना को दो व्यक्तित्वों में बाँटकर हम दोनों बहिनों को जन्म दिया था । मीराबाई की भाँति पुरुष के समीप कभी समर्पण न करने की भावना मुझे दी थी और भक्ति-भाव की तन्मयता मेरी छोटी बहिन वन्दना को !”

कहते-कहते उनकी आँखें फिर भर आईं ।

बहुत देर तक दोनों चुप बैठे रहे । अब तक जैसे-तैसे कुछ न कुछ वह खाता आ रहा था । अब धीरे से उसने फलों की तश्तरी एक ओर सरका दी ।

मीरा बोली—

“सुधी बाबू ! मैं भगवान् के गीत लिखती थी और जब वन्दना मेरे उन गीतों को गाती थी तो मारे आनन्द के मेरी माँ कभी कभी रो पड़ती थीं, फिर आँसू पोंछती रूँघे कण्ठ से कहा करती थी—

“मीरा ! तू मेरे प्रभु का भाव भरा गीत है ! और—

वन्दना है मेरे अन्तर्यामी का करुण-स्वर !”

कहते कहते मीरा की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह निकली । गीले स्वर में बोलीं—“सुधीबाबू ! मैं नहीं चाहती कि बुझने से पहिले मुझे कोई छू पाये । मैं मन्दिर की दीप-ज्योति की भाँति अपने प्रभु के चरणों में जलते-जलते ही बुझ जाना चाहती हूँ ।”

तभी वन्दना कमरे में आई । मीरा ने चुपचाप वन्दना से छिपाकर आँसू पोंछ लिये !

वन्दना ने आते-आते सुधीर को कमरे में बैठा देखा। पहले तो वह दरवाजे ही में ठिठक गई, फिर आकर अपनी दीदी के पास खड़ी हो गई।

आज पहली बार सुधीर ने वन्दना को देखा है। देखकर लगा कि मीरा की माँ झूठ तो नहीं कहती थीं। सचमुच लगता है जैसे उस सिरजनहार ने एक ही ढाँचे से, एक सी माटी से दो सुन्दर प्रतिमायें रची होंगी।

वन्दना की आँखें सूज आई थीं। लगता था जैसे अभी-अभी खूब रोधोकर आई है !

वन्दना बिना कुछ कहे कमरे से बाहर जाने लगी। मीरा बोली—

“अरी सुन तो…………।”

“क्या है ?” जाते-जाते बोली।

“किताब पढ़ ली ?”

“पढ़ ली।” कहते-कहते बाहर चली गई।

कुछ देर कमरे में फिर सन्नाटा रहा। मीरा बोली—

“सच, आप लोग होते बड़े निर्दयी हैं। इस जिन्दगी में ही क्या कम दुख है ? फिर क्यों लिखते हैं ऐसा कि रोते-रोते किसी की आँखें सूज जायें ? देखी थीं वन्दना की आँख ?”

सुनकर कुछ देर वह मीरा की ओर देखता रहा फिर बोला—

“कोई भी जान बूझकर ऐसा नहीं लिखता। बस, लिख जाता है ! लिखना पड़ता है।”

“जानती हैं” कहते-कहते उन्होंने दबी उसाँस छोड़ी और चुप हो गई !

दिन का तीसरा पहर है। अभी-अभी वह मीरा के यहाँ से लौटा है। वह चुपचाप कम्बल ओढ़कर लेट गया।

आज उसे लग रहा है जैसे शैवाल की कालिमा मिट गई है। उसके चारों ओर बह रही है स्नेह, ममता की निर्मल जल-राशि !

जादू नगरी के वे रहस्य—वे इन्द्रजाल ! सब कुछ जैसे सुलभ गया है। लेकिन यह कैसा दर्द लेकर लौटा है ? क्यों अन्दर ही अन्दर कुछ मथे जा रहा है ?

उसे याद आई मीरा की वह चिट्ठी जो उसने कभी स्विटजरलैण्ड से लिखी थी। उसने पाठक पाठिकाओं द्वारा भेजे गये पत्रों की फाइल निकाल और उसमें से निकाला वह पत्र जिसे अपने दुर्दिनों में कई बार उसने पढ़ा है।

वह बैठकर उसी पत्र को फिर पढ़ने लगा—

मेरे अपरिचित बन्धु,

सौन्दर्य के देश स्विटजरलैण्ड की इस मनोरम भील के किनारे बैठी-बैठी मैं आपको यह पत्र लिख रही हूँ। इतनी दूर से एक लड़की द्वारा और वह भी हिन्दी में लिखा पत्र पाकर आपको अवश्य ही अचरज होगा !

किसी को अचानक अचरज में डाल देना मुझे बहुत अच्छा लगता है पर आज जिस बात को लेकर मैं पत्र लिखने बैठी हूँ, वह मेरी नितांत अपनी बात है। बस, जैसे कहकर दर्द से हल्के हो जाना या सर्प से दंशित स्थान को चीरकर निर्विष हो जाना !

आज बहुत जाड़ा है। मेरा होटल बिलकुल भील के पास ही है। रातभर आकाश से बर्फ के हल्के-फुल्के सफेद गुब्बारे भरते रहे हैं और

मैंने आज की सारी रात आपका 'सान्ध्य दीप' पढ़ते-पढ़ते बिताई है।

जब थक जाती थी तो आकाश से भरती इस बरफ को बन्द खिड़की के शीशों से देखती रहती थी।

इस तरह आकाश से भरती बरफ को देखना मुझे बहुत पसन्द है— देखते-देखते एक ताजगी-सी मिलती है और इस प्रकार बड़ी से बड़ी थकान मिटाकर मैं काम में फिर जुट सकती हूँ। कहाँ भटक गई—

हाँ, तो बात में 'सान्ध्यदीप' की कर रही थी। जब पढ़कर समाप्त किया तो रात शेष थी।

आकाश से भरती वह बरफ ऐसी लग रही थी जैसे आकाश के असंख्य शिशु-तारे मुँह से साबुन के बुलबुले उड़ा रहे हैं और जैसे मैं भी उन तारों में से एक शिशु-तारा हूँ।

ऐसा शिशु-तारा—

जो अखिल भूमण्डल को एक दृष्टि में देख सकता है। जाने कितनी देर तक मैं धरती पर बसती अनगिनत आत्माओं में से आपको खोजती रही फिर लगा जैसे मैंने पा भी लिया है।

आपकी पुस्तक पढ़कर वर्षों से सोते प्राण जाग उठे हैं।

'सान्ध्यदीप' की अभागी उस अर्चना को पढ़कर मैं पागल हो रही हूँ। समझ नहीं पाती कि यह कैसे हो सकता है? कैसे हो पाई है दो आत्माओं में ऐसी अनु रूपता? जैसे मेरी और अर्चना की एक ही कहानी है।

अर्चना ने जिस तरह का जीवन बिताया है, वैसे ही विमूढ़ सुन्न अवस्था में मैं भी बरसों से जीती आ रही हूँ; पर समझ नहीं पाती यह आज अचानक मुझे हो क्या गया है?

प्रकृति के इस अपार सौन्दर्य में भी आज तक गहरी उदासी ही देख पाती थी। दूर भरते भरने लगते थे जैसे युग-युग से चला आया किसी का चिरन्तन रुदन हो पर आज तो लग रहा है जैसे—

वह चिरन्तन रुदन सँकड़ों नूपुरों का रुनभुन बनकर आज मेरे कानों में रह-रहकर गूँज उठता है !

आज तक भगवान् से मैं अपनी मौत ही मांगती आई हूँ पर अब मुझे अपने से मोह हो उठा है । मैं अब जीना चाहती हूँ । सोचती हूँ—कैसी होती है कलाकार की शक्ति ! इतनी दूर बैठे आपने मुझे प्राणदान दिया है !

“सांध्यदीप” पढ़ने के बाद आज रह-रहकर मुझे अपने गुरुदेव का एक गीत याद आ रहा है । शान्तिनिकेतन में कई बार यह गीत उनके श्री मुख से ही सुना था ।

वे प्रायः भाव-विभोर हो आँखें बन्द किये इस गीत को गा उठते थे—न जाने क्यों मैं भी सबेरे से उसी गीत को गुनगुनाये जा रही हूँ—

“ना जानि केनरे एतदिन परे

जागिया उठिल प्राण

ओरे, उथिल उठे छे वारि

ओरे, प्राणेर वासना

प्राणेर आवेग

आज यहाँ भील के किनारे बैठी अपनी इस नई स्फूर्ति के पंखों पर उड़कर सारी पृथ्वी को नाप सकने की शक्ति अपने में महसूस कर रही हूँ ।

आह ! आपसे मिलने का कितना मन करता है पर जानती हूँ कितने समुद्र, पर्वतों और धरती की कितनी लम्बी दूरी हमारे बीच है ।

मैं जल्दी ही भारत लौट रही हूँ । तभी आपके दर्शन करूँगी । पिताजी अस्वस्थ थे । उन्हीं को लेकर यहाँ आई थी । अब वे लगभग स्वस्थ हैं । बस, थोड़े दिनों बाद ही मैं यहाँ से चल दूँगी ।

जो बात लिखने में बैठी थी सो तो भूल ही गई । देखिये, अपनी एक अविश्वनीय अनुभूति की बात लिख रही हूँ ।

‘सांध्य दीप’ पढ़ते-पढ़ते कई बार मुझे लगा जैसे उपन्यास की पात्री वह अर्चना मेरे निकट ही आ बैठी है—साकार ! किन्तु प्रच्छन्न !!

अपने इतने निकट मैंने उसका अनुभव किया कि उसकी एक-एक साँस तक मैं सुन रही थी। सहसा मैंने महसूस किया—उसका पुलक स्पर्श !

और फिर मेरे रोम-रोम में एक सिहरन सी दौड़ गई। लगा जैसे उसने मेरे मन-प्राण-शरीर सबको अन्दर से छू लिया है।

यहाँ भील के किनारे जो पत्र लिख रही हूँ सो लगता है जैसे मेरे लिखे एक-एक शब्द को वह अपनी गीली आँखों से पढ़ती जा रही है। जैसे उसका वह सारा दर्द मेरे रोम-रोम में आ समाया है।

जानती हूँ कि लेखक से ऐसी बात मुझे नहीं पूछनी चाहिए पर बिना पूछे मैं रह नहीं सकती—बताइये, क्या यह सच्ची कहानी है ? क्या वे सजीव कभी इस धरती पर रही हैं ?

सच, उनकी एक-एक बात कितनी सप्राण है। पढ़कर मेरे बुझते प्राण कैसे प्रदीप्त हो उठते हैं। उनकी इस बात को मैंने कितनी बार पढ़ा है कि पढ़ते-पढ़ते कण्ठस्थ ही हो गई है। एक जगह उनका सन्तप्त हृदय कैसे फूट पड़ा है ! कहती हैं—

“यातना हमारी अवशता ही नहीं है, गौरवमयी क्षमता भी है !!

इसीलिए मुक्तिदा है ! मोक्षदा है !!”

और आज अर्चना की यह अमर बाणी पढ़कर मैं भी ‘मुक्ति’ पा गई।

कितने दिनों से एक बात को लेकर मन ही मन घुलती आ रही थी पर आज मैंने निश्चय कर लिया है कि वर्षों से जिन्हें मैं मुक्ति नहीं दे पा रही थी उन्हें आज मुक्त कर दूँगी।

बात यह है कि अब मेरी माँ इस संसार में नहीं हैं। जैसा प्यार मेरी माँ ने मुझे दिया था वैसा इस धरती पर शायद ही किसी को

अपनी माँ से मिला होगा। अब उनकी याद आते ही लगता है जैसे पीड़ा ही प्यार का आदि अन्त है। जब वे जीवित थीं तो उनका तनिक सा दुख देखते ही मैं मर-मर जाती थी और अब जब वे चली गई हैं, तो उनकी एक-एक बात मेरे लिए स्मृति-दंश बन गई है।

सोचती हूँ—

क्या प्यार पीड़ा में जन्म लेकर, सिसक-सिसक कर पीड़ा ही में नहीं समा जाता ?

मेरी माँ वष्णव भक्त थीं इतनी पावन ! इतनी महान् !! कि जब पिताजी उनके आसन पर किसी दूसरे को बिठाने की बात कहते थे, तो मैं मारे क्लेश के तिलमिला जाती थी।

पर आज लगता है जैसे आपकी अर्चना ने मेरी इतनी बड़ी यातना से भी मुझे मुक्ति दे दी है। अब मैं सब सह लूँगी।

आज मुझ में सब कुछ सहने की शक्ति है और वह भी क्षमता के अभिमान को लेकर !

मेरे पिताजी माँ की मृत्यु के बाद किसी महिला से प्रेम करने लगे हैं। वे उनसे शादी कर लेना चाहते हैं। मैं वैसा नहीं चाहती थी पर आज उन्हें मुक्त कर दूँगी—ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है।

पूर्व दिशा में एक दिव्य दीप्ति सी कुहरे को घोलती बढ़ी आ रही है। देखकर लगता है जैसे मैं भी एक लम्बी क्लेश भरी रात बिता कर जाग रही हूँ और अब—

जागरण की इस नींव पर अपने स्वप्नों का नया संसार बनाने जा रही हूँ।

ओह ! न जाने क्या-क्या लिख गई हूँ लेकिन अब 'यह ठीक नहीं है' सोचकर लिखे हुये को कलम की नोक से मिटाऊँगी नहीं।

मेरा विश्वास है कि 'सत्य' सदा 'सुन्दर' होता है इसलिए कल्याण-
कर भी—

अच्छा अब रुकती हूँ । पत्र द, मेरा—मेरी आत्मा का प्रणाम
लीजिये ।

विनीता—

एम. टैम्बे

पत्र को उसने कितनी ही बार पढ़ा है । जिसे आज तक किसी का
मात्र भावावेश ही मानता आया है उसमें आज लग रहा है कि कितनी
बड़ी सच्चाई है ।

पत्र पढ़कर पहिली बार उसने लेखक की शक्ति को पहिचाना है
—कि किसी के द्वारा लिखा हुआ किसी दूर बसते अपरिचित प्राणी के
मर्म को कैसे छू लेता है !

—कि कैसे किसी के सोते प्राणों में नई चेतना जगा सकता है !

घृणा और उपेक्षा के संसार में वह इतना टूट गया है कि 'विश्वास'
उसके लिए अतहोनी बात बन गई थी, पर आज मीरा के पत्र को पढ़-
कर उसमें नया विश्वास जागा है ।

विश्वास—

अपने प्रति !

अपने लेखक के प्रति !

लेखक की शक्ति के प्रति !

सोचने लगा—

इसी विश्वास के अभाव में वह कई बार कमजोर हो उठा है ।

इसीलिए हिंसक भी—यहाँ तक कि एक बार उसने मुन्ना का गला
तक घोंट देना चाहा था !

उसे आज जीवन का नया सूत्र मिला है—

—कि विश्वास ही देता है यातना सहने की गौरवमयी क्षमता !

—कि यह क्षमता ही है उसकी सबसे बड़ी शक्ति !!

उसने मीरा का पत्र एक ओर रख दिया और लेटा-लेटा सोचने लगा—

मेरे सांध्यदीप ने किसी दिन मीरा को दी थी—

—जीने की प्रेरणा !

और आज उसके पत्र ने मुझे दिया है—

--जीने का विश्वास !!

रात के ग्यारह बजे हैं। वह अभी-अभी मीरा के पास से लौटा है। उसकी एक-एक बात उसे रह-रहकर याद हो आती है? टूटे क्षीण-स्वर में कहा था—

“जानती हूँ अब और नहीं चल पाऊँगी। वन्दना को देखना—अपनी खाँसी का इलाज क्यों नहीं कराते—सुनो—एक वचन माँगती हूँ—चाहे मन में कितना ही दुःख-क्लेश हो कभी मुन्ना का जी मत दुखाना।

कितने प्राण—कितनी प्रतिभा हैं उसमें—उसे कभी दबाना मत। उसे अपने निकट देखकर कैसे-कैसे सपने जागते हैं—क्या-क्या मैं उसके लिए करना चाहती थी पर अब क्या करूँ ?

चाहती हूँ कैसे भी थोड़े दिन और जी पाती मुन्ना की माँ को माफ कर देना—सबके अपने-अपने दर्द होते हैं।.....”

मीरा की एक-एक बात न जाने कितनी बार कितनी तरह से उसने दुहराई है। वह थक गया है। चाहता है नींद आ जाये पर कैसे भी नींद न आई।

वह उठा और कम्बल ओढ़कर खिड़की के पास आ बैठा। उसने खिड़की-खोली। खिड़की खोलते ही लगा जैसे हवा की ठण्डी तीखी लहर ने उसके चेहरे पर प्रखर अस्त्र की तरह प्रहार किया है। उसने खिड़की बन्द कर दी।

बन्द खिड़की के काँच से ही आकाश की ओर देखा। आकाश में शुक्रतारा उग आया है। उसी ओर एकटक देखता-देखता सोचने लगा—

क्या अंधकार से आवृत्त मेरे जीवन में भी कहीं शुक्रतारा ही नहीं उग आया है ?

उसने कभी पत्र में लिखा था कि वह भी उन शिशु-तारों में एक तारा है । सोचने लगा—

मीरा शुक्रतारा है !

एक संकेत है—

—कि भोर होने वाला है !

—कि अधियारी मिटने वाली है !

किन्तु शुक्रतारा—

जो भोर होने से पूर्व ही बुझ जाता है ।

सोचते ही एक गहरी निराशा उस पर छा गई ।

लगता है जैसे मीरा उस तारे की भाँति ही प्रतिपल-प्रतिक्षण जल-जल कर बुझी जा रही है, किन्तु बुझते-बुझते भी उसने अपने आलोक से उसे दीप्त कर दिया है ।

फिर मन ही मन बड़बड़ाया—

मीरा !

नहीं जानता कि मेरा भविष्य क्या है ? जिस ओर मैं बढ़ा जा रहा हूँ, नहीं जानता कि उसका अन्त कहाँ जाकर होगा? पर बुझते-बुझते भी तुमने जो दिया है, सो मैं कभी न भूल पाऊँगा ।

तुमने वन्दना के लिए मेरा संरक्षण माँगा है और मैं तुम्हारे आशीर्वाद की भीख माँगता हूँ !

× × × ×

टाइफाइड के एक विशेषज्ञ प्रसिद्ध डाक्टर को लेकर जब लौटा तो सूरज निकल आया था । उसने मीरा के शरीर की परीक्षा ली । फिर बोला—

“फिफ्र की कोई बात नहीं है । कमजोरी बढ़ गई है । टाइफाइड के लिए एक नई दवा निकली है । दवा कीमती है पर देना जरूरी है” कह-

कर डाक्टर ने दवा का नाम लिखा और सुधीर को दे दिया ।

X X X \

सुधीर के पास जितने भी रुपये थे वह सब लेकर भी दवा का मूल्य ऊँचा उठ जाता है— क्या करे ? कहाँ जाये ? कहाँ से लाए दवा का मूल्य ?

तभी उसे याद आया । मुन्ना की प्रथम जन्म-तिथि पर उसने शीला के विशेष आग्रह पर मुन्ना को एक सोने की जंजीर दी थी । वह अब भी कहीं अलमारी में पड़ी थी ।

दवा आ गई और अलमारी से वह सोने की जंजीर गायब हो गई ।

शाम तक लगा कि मीरा की तबियत पहिले से सुधर गई है । अब उसे नींद आ गई थी ।

सुधीर मीरा के कमरे से बाहर आया । तभी पास के कमरे से किसी के गुनगुनाने की आवाज आई । वह उस ओर बढ़ गया ।

दूसरे कमरे के द्वार के पास जा खड़ा हुआ । सामने पड़े पर्दे से उसने देखा—सामने ही एक अलमारी को मंदिर जैसा सजाया गया है । जिसमें राधाकृष्ण की मूर्ति रखी है । उसी के पास बैठी वन्दना मुन्ना को अपने हाथ से ग्रास तोड़-तोड़कर खिला रही है । साथ ही धीरे-धीरे न जाने क्या गा रही है !

मुन्ना बड़े ध्यान से खाना खाते-खाते अपनी जीजी को देखे जा रहा है । देखते-देखते उनका गाना सुन रहा है ।

उन दोनों को इस तरह बैठे देख सुधीर को याद आया मुन्ना का बनाया वह चित्र—

जिसमें चिड़िया अपने बच्चे को चुम्मा खिला रही है और मनुष्य का बच्चा पास ही भूखा रो रहा है, जिसकी माँ उसे छोड़कर कहीं चली गई है, जिसका बाप पीटता है !

गाते-गाते वन्दना रुक गई ।

तभी मुन्ना बोला—

“अच्छा अब वह ‘नागिन’ का गीत—

“कौन-सा गीत ?”

“मेरा मन डोले—तेरा तन डोले ।”

“नहीं, वह नहीं ।”

“क्यों जीजी ?”

“मुझे याद नहीं है ।”

“मुझे याद है” कहकर उसने जल्दी से मुँह का घास निगला और गा उठा ।

“मेरा मन डोले—तेरा तन डोले ।”

गाते-गाते मुन्ना अपने कंठ के नीचे अंगुलियों के ठोके मार-मारकर सपेरे की बीन जैसा विचित्र स्वर निकालने लगा—

“ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऽ ।”

उसे याद आया । मीरा ने बताया था कि माँ कहा करती थी—

“मीरा ! तू मेरे प्रभु का भाव भरा गीत है !

और—

वन्दना है मेरे अन्तर्यामी का करुण-स्वर !!

फिर देखा मुन्ना के चेहरे पर दीप्त उत्साह !

वह एक गहरी उसाँस छोड़ता वहाँ से चला आया ।

आते-आते उसके कानों ने सुना वन्दना का भीमा स्वर—

“मुन्ना ! कौन आया था ?”

“क्या पता ?”

×

×

×

×

रात के आठ बजे हैं । वन्दना के कमरे से उठकर वह मीरा के बिछौने के पास चुपचाप आ बैठा । मीरा सो रही थी । वन्दना रेडियो

स्टेशन चली गई थी। वहाँ उसका प्रोग्रेम था। मुन्ना वन्दना के कमरे में सो गया था।

तभी मीरा ने आँखें खोलीं। रेडियो सेट की ओर संकेत किया फिर धीरे से बोलीं—

“भूल ही गई—वन्दना का नौ बजे प्रोग्रेम था।”

सुधीर ने रेडियो चला दिया।

सहसा रेडियो से छन-छनकर आता सुनाई पड़ा—एक मीठा, पतला कण्ठ-स्वर !

—जैसे वर्षा की रिमझिम में वीणा की मन्द झंकार, रह-रहकर बेला के खिंचे तार—स्वर के साथ गूँज उठती है।

वन्दना गा रही थी—

मैं नीर भरी दुख की बदली !

विस्तृत नभ का कोई कोना

मेरा न कभी अपना होना

परिचय इतना—इतिहास यही

उमड़ी कल थी—मिट आज चली।

मैं नीर भरी दुख की बदली ॥

गीत बन्द हो गया पर लगा जैसे वीणा के मन्द स्वरों में गूँजता बेला का खिंचा तार-स्वर कण-कण में छा गया है—

जैसे चारों ओर गूँज उठा है—

उमड़ी कल थी

मिट आज चली

मैं नीर भरी.....।

फिर धीरे-धीरे काल के बहते पल-क्षणों में वह स्वर भी बह गया। कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा। तभी मीरा रुकते-रुकते आकुल हताश स्वर में बोली—

मैं भी क्या बदली ही नहीं हूँ ? कल उमड़ी थी.....
...आज मिटी जा रही हूँ ।

सुधीर आश्वस्त स्वर में बोला— “डाक्टर कहता है आप ठीक हो जाएंगी ! विश्वास रखिए ।”

बोलीं—

“विश्वास ही को लेकर तो जी रही हूँ ।”

फिर दोनों में से बहुत देर तक कोई भी न बोला ।

सहसा नीचे सीढ़ियों के पास मोटर के रुकने की आवाज आई और थोड़ी ही देर में वन्दना कमरे में आ खड़ी हुई । सुधीर को वहाँ देखकर आते-आते ठिठक गई । सुधीर और मीरा ने देखा कि उसकी आँखें जवा कुसुम-सी लाल हैं । लगता है जैसे अभी अभी रो-धोकर आई है ।

वन्दना अपनी दीदी के कमरे में एक क्षण भी नहीं रुकी । हवा के झोंके की तरह कमरे से बाहर चली गई ।

सुधीर अचरज से उनकी ओर देखने लगा । वे कुछ देर आँखें बन्द किये पड़ी रहीं फिर बोलीं—

“किसी.....भी.....तरह चैन नहीं.....लगता है आज फिर कुछ हुआ है ।”

सुधीर घबराता सा-बोला—

“क्या बात है ? क्या हुआ है ?”

“रेडियो स्टेशन पर ही कुछ हुआ होगा ।”

“वहाँ क्या हो सकता है ?”

उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया फिर आँखें बन्द किये ही बोली—

“सुधी बाबू ! कहने को आज हम आजाद हैं पर लगता है हमें आजादी मिली है बुराई के लिए.....जैसे अच्छाई हम से छिन गई है ।.....आह ! कैसे शैतान हैं ये रेडियो वाले ! मैं कहती हूँ मत गा जाकर रेडियो पर ! लेकिन मानती ही नहीं.....पता

नहीं क्या होगा इस लड़की का.....क्या होगा.....।” कहते-कहते उनकी बन्द पलकों से पारदर्शी श्वेत मोतियों की तरह उबडबाते आँसू निकल-निकलकर बहने लगे ।

कुछ देर सुधीर चुपचाप बैठा रहा फिर उठा और वन्दना के कमरे की ओर चला गया ।

वन्दना से कभी आमने-सामने एकान्त में उसकी बात नहीं हुई है । इसलिए उधर जाते-जाते उसे कुछ संकोच-सा हो रहा था । कमरे का द्वार बन्द था । कुछ देर द्वार के बाहर खड़ा कुछ सोचता रहा फिर धीरे से उसने किवाड़ खटखटाया । अन्दर से कोई आवाज नहीं आई ।

उसने धीरे से किवाड़ों को खोला ! वन्दना मुन्ना के पास झोँधी सेटी तकिये में मुँह छिपाये फूल-फूलकर रो रही थी ।

सुधीर ने धीरे से कहा—

“वन्दना !”

सुनते ही वन्दना बिछौने से उठकर धरती पर खड़ी हो गई । फिर चुपचाप आँसू पोछती बाहर चली गई ।

सुधीर मुन्ना के पास बैठ गया । उसके चेहरे की ओर देखता-देखता न जाने कैसी-क्या बातें सोचने लगा । तभी एक विचार आया जैसे मुन्ना तालाब में बहता एक खाली पीपा है जिसे नियति की लहरें बहाकर कभी किनारे के पत्थरों से टकरा देती है, कभी बहाकर खिले कमलों के पास ले जाती हैं और तब उनके मृदु कोमल स्पर्श से वह अभागा पीपा सिहर-सिहर उठता है ।

वन्दना कमरे में आई । रुँधे स्वर में बोली—

“दीदी की तबियत अज कैसी है ?

“ठीक है । इस दवा से काफी लाभ हुआ है पर बहुत दुखी हैं ।”

“जानती हूँ ! क्या करूँ ? कुछ ख्याल ही नहीं रहा । गलती से उनके सामने पहुँच गईं ।”

“बात क्या है ?”

सुनकर वन्दना कुछ देर चुप रही फिर बोली—

“कोई खास बात नहीं है। जो आजकल सब जगह चलता है वही स्टेशन पर भी है। सब ठीक हो जायेगा।”

फिर दोनों में से कोई भी न बोला। कुछ देर बाद बोली—

“कल भी मेरा प्रोग्राम है। सोचती हूँ यदि नहीं रहा गया तो अच्छी तरह निबट ही आऊँगी।”

सुधीर बोला—“मैं साथ चलूँ ?”

“नहीं जी, वह कोई बड़ी बात नहीं है, जिसके लिए आपको तकलीफ दूँ। सब ठीक हो जायगा।”

कुछ देर सुधीर वहीं चिन्तित-सा बैठा रहा फिर उठकर मीरा के कमरे में आ गया।

कुछ मास पूर्व वन्दना कलकत्ते में डाक्टरेट की तैयारी कर रही थी। यहाँ दशहरे की छुट्टियों में आई थी, पर जब पिता जी से भगड़ा हो गया और वे कलकत्ते चले गये, तो घर का खर्च चलना कठिन हो गया था। इसलिए वह कलकत्ते वापिस नहीं गई।

वन्दना अपनी दीदी से छिपकर एक दो जगह पढ़ा आती है। रेडियो पर गाती है, अखबारों में लेख लिखती है और इस तरह जैसे-तैसे घर का काम चलाए जा रही है।

वह नहीं चाहती थी कि रेडियो पर जाकर गाये। रेडियो पर जैसा समाज है, उसमें किसी भले घर की लड़की का जाकर गाना सहज बात नहीं है। वन्दना को विवश होकर ही वहाँ जाना पड़ता है।

दूपरे दिन वन्दना जब रेडियो स्टेशन पर पहुँची तो देखा कि रिहर्सल के लिए स्टुडियो में कोई नहीं है।

रिहर्सल के समय स्टुडियो में सबका गायब रहना वहाँ साधारण सी बात है। वन्दना बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही। तभी एक खाँ साहब आँखों में बुरी तरह सुरमा भरे आये।

वन्दना को वहां अकेले बैठे देख एक बार मुस्कराए। उनके काले दांत ओठों से बाहर निकल आए।

असल में बात यह है कि खां साहब रात को रूप के बाजार में--वेश्याओं के अड्डों पर अपना साज बजाते हैं और दिन में अपनी घोर नैतिक वादी कांग्रेसी सरकार के रेडियो विभाग में नौकरी करते हैं।

इन्हीं लोगों के साथ जाकर बैठना होता है, गाना होता है इनसे अच्छी-बुरी बातें सुननी होती हैं, अच्छे घरों की लड़कियों को, महिलाओं को वन्दना की ओर मुँह कर वे खां साहब पास ही आ बैठे फिर पान की पीक निगलकर बोले—

“बोलो महाराज ! कौनसा सुर है” यह महाराज, सम्बोधन वन्दना को अच्छा नहीं लगा। वह उठकर कोने में रखे पिआनों के पास जा बैठी। खां साहब की ओर पीठ देकर उसने पिआनों पर अपने गाने का सुर बजाया। तभी एक दूसरे साजिन्दे साहब आये---

आगन्तुक साहब ए. आई. आर. पर आकर गाने वाली हर लड़की को ‘उड़ती चिड़िया’ या फूल-फूल पर मड़राने वाली रगीन ‘तितली’ समझते हैं।

अपनी इस आन्तरिक भावना के सम्बन्ध में बड़ी सच्चाई से जबतक अपने साथियों को बतलाते भा रहते हैं।

वहां आकर गाने वाली हर लड़की का उसके गुण, रूप, स्वभाव के अनुरूप चुन-चुन कर अपना एक विशेष नाम भी रख छोड़ा है।

कलाकार लड़की का वह विशेष नाम जब पान से लाल ओठों द्वारा मुखरित होता है तो उनके साथी साजिन्दे कभी खिलखिला पड़ते हैं और कभी हँसने का मौका नहीं हुआ तो आँख के भद्दे इशारे से अपनी दिली खुशी जाहिर कर देते हैं। वे मन में मेल नहीं रखते। जो अन्दर, सो बाहर।

उन आगन्तुक महाशय ने रिहसल के स्टुडियो में पैर रखा। उन्हें वन्दना दिखाई नहीं दी। वह एक ओर पिआनो के पास बैठी थी। आते ही बोले—

“अमाँ, वह अपनी ‘बंसरी’ नहीं आ…………।”

बीच ही में खाँ साहब ने आँख से भद्दा इशारा किया—

लेकिन इससे क्या ? वे क्या किसी से डरते हैं ? अपनी राह पर चलते-चलते उन्होंने इस स्टेशन पर आज सात साल बिता दिये हैं।

वे अच्छी तरह जानते हैं कि यहाँ हर लड़की अपनी कोई लाचारी लेकर ही आती है। इसलिए उसे सहना होगा—सुनना होगा। यदि नहीं सहा तो उसके गाने के साथ बेसुरा बजायेंगे। प्रोग्राम से ठीक पहिले बेसुरा तानपूरा दे देंगे। तबले वाले से कहकर लय घटा-बढ़ा देंगे।

इस तरह से उस अभागी लड़की को लाचार कर देंगे कि जो कुछ भी उनके मुँह से निकले उसे सह लें, चुपचाप सुन लें। मुँह बनाकर नहीं—मुस्कराकर—हँसकर—

हुआ भी अब यही है। कुछ दिनों लड़कियों ने प्रतिरोध किया किन्तु अब उनको बातें सुनकर हँसने का अभ्यास हो गया है।

उसी समय दो लड़कियाँ आईं। दूसरे साजिन्दे भी इकट्ठे हुये। हँसी-मजाक छिड़ गया। स्टुडियो में रस बरसने लगा।

वह रस कभी दबा-दबा कानों में धुलता, कभी खुलकर रोम-रोम को भिजोने लगता पर वन्दना क्या करे ?

वह मधुरस उसे लगता है जैसे कोई पिघलाकर तप्त सीसा उसके कानों में उड़ले जा रहा है।

सदा की भाँति वन्दना के रिहसल का तमाशा समाप्त हो गया। रिहसल तो बहाना है। उद्देश्य है रस भरी बात !

वह अपनी किताब लेकर दूर जा बैठी । एक बोला —

“आज साड़ी छाँट कर पहिनी है ।”

दूसरा — “जैव रही है !”

वह सबसे अनासक्त सी बैठी थी । पढ़ तो सकती नहीं क्योंकि अन्दर ही अन्दर जली-भुनी जा रही है । किताब में मुँह छिपाकर बैठना ही उस निर्लज्ज व्यापार को सहने के लिए एक मात्र सहारा था ।

तभी उनमें से एक लड़की-आर्टिस्ट बोली —

“इस वन्दना को क्या हुआ है ?”

दूसरी बोली —

“आज क्या कोई नई बात है । वह अपने को कुछ खास समझती है ।”

तभी वे महाशय पान चबाते-चबाते पैर फैलाकर, रूठने की अदा में, नाक के स्वर में पंजाबी बोले —

“सानूँ ना बुलाओ असी रुस्से होइ हाँ ।”

(मुझे मत बुलाओ मैं रूठा हुआ हूँ) उनका यह व्यंग्य वन्दना के लिए ही था ।

सुनकर वन्दना का तन-मन जल गया ।

वन्दना ! जलती हो तो जलती रहो पर प्रोग्राम के बाद जो चैंक मिलेगा, उसके लिए सब सहना होगा । सब सहते हैं, तुम भी सहो ।

उसी समय आये एक कम्पोजर महाशय ! आप भी ए० आई० आर० पर काम करते हैं ।

ए. आई. आर की प्रायः सभी लड़कियाँ आपकी शिष्याएँ हैं ।

महीने में चारों रविवार अपनी शिष्याओं के घर पर ही बीतते हैं । चाय-पानी, खाना-पीना तो होता ही है, साथ में हर एक से पचास-साठ रुपये महीने भी एंठ लेते हैं ।

इतना कुछ देने पर भी आर्टिस्ट लड़कियाँ घाटे में नहीं रहतीं, क्योंकि

रेडियो पर रिकार्ड होने वाले प्रसार-गीत, सामूहिक गान, विदेशों से आये विशिष्ट महमानों के सामने गाये जाने वाले स्वागत-गीत—इन सारे कार्य क्रमों में उन्हीं शिष्याओं के स्थान एक तरह से रिजर्व होते हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि वे बेसुरा गायें—बेताला गायें—परवाह नहीं—कम्पोजर साहब की शिष्या हैं। इसलिए साजिन्दे सब संभाल लेंगे और फिर कम्पोजर साहब गीत भजन के बीच में म्युजिक के ऐसे विशेष पीसेज (टुकड़े) साजिन्दों से दिलवायेंगे कि उनका गाना छा जायेगा।

पर वन्दना क्या करे ? ए. आई. आर. पर वह एक ऐसी निरीह हिरणी है कि जिसके चारों ओर कुत्ते-भेड़िये मुँह फाड़े खड़े हैं।

न वह किसी की शिष्या है, न सहज भाव से उस समाज में मिल ही सकती है।

वहाँ बैठे मन ही मन उसने निश्चय किया कि ड्युटी ऑफीसर तो इन लोगों जैसे अशिक्षित नहीं हैं—वे सभ्य हैं—शिष्ट हैं। उन्हीं से जाकर क्यों न अपने मन के इस दुःख को कहा जाये— वे तो कुछ राह बतायेंगे !

जब कम्पोजर साहब ने अपनी शिष्याओं के लिए म्युजिक पीसेज बनाने में मन लगाया तो वह उठकर सीधी ड्युटी रूम में आई। वहाँ दो ड्युटी ऑफीसर बैठे थे।

वन्दना ने मौका देखकर अपनी-विवशताओं की बात संक्षेप में उन्हें बता दी। उनमें से एक अर्धपूर्ण हँसी हँसते बोले—

What is this life, if full of care,

We have no time to stand and stare.

—तो मॅडम। मेरा तो यही खयाल है कि लड़कियों की लाइफ में एक स्टेज ऐसी आती है जब उन्हें लगता है जैसे सब उन्हीं की ओर घूर रहे हैं। पर घूरने की फुरसत यहाँ किसे है ?” कहते-कहते उन्होंने अपने साथी की ओर देखा, फिर वन्दना से छिपाकर दुष्ट हँसी हँसने लगे।

वन्दना ने उनकी उस लुका-छिपी को देख लिया था। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि यह भी अन्दर से उन्हीं भेड़ियों की जाति के हैं।

मारे क्रोध और क्षोभ के वह पागल हो उठी। कहीं लुका-छिपकर रो लेने के लिए बेचैन हो रही थी। बिना रोये, मन में भरे उस तूफान को बिना बहाये, आज गा कैसे पायेगी? आधा घंटा ही तो शेष है!

इतने बड़े रेडियो स्टेशन में उसे कहीं भी छिपकर थोड़ी देर रो लेने के लिए जगह नहीं मिली।

—ऐसी जगह कि जहाँ अन्दर ही अन्दर खोलते खून को आँसुओं में बहाकर जी हल्का कर पाती।

तभी उसने सुना—कोई उसका नाम लेकर बुला रहा है। उसने पीछे मुड़कर देखा। उन दो ड्यूटी ऑफीसरों में से, एक जो श्रोता था, वही उसके पास आया और स्निग्ध स्वर में बोला—

“वन्दना जी! आप से कुछ कहना है। चलिए केन्टीन चलें। अभी वहाँ भीड़ नहीं रहती। वहीं ठीक रहेगा।”

दोनों केन्टीन में आ बैठे। वह बोला—

“वन्दना जी! मैं आपकी बात अच्छी तरह समझता हूँ। आपकी जैसी कई आर्टिस्ट इसी तरह रो-धोकर यहाँ से लौट गई हैं। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ? बाल-बच्चे हैं—माँ-बाप जीवित हैं—” कहते-कहते उस गरीब ड्यूटी ऑफीसर की आँखें छल-छला आईं।

थोड़ी देर चुप बंठा रहा, फिर बोला—

“अगर आप इन लोगों की म्यूजिक डाइरेक्टर, एस०डी०, डाइरेक्टर जनरल से शिकायत करेंगी तो कुछ दिनों तो ये चुप रहेंगे, फिर सब मिलकर आये दिन आपके खिलाफ रिपोर्ट करेंगे—केस बनायेंगे कि यू डोन्ट कॉपरेट! (सहयोग नहीं देती)।

यह हमारे यहाँ का ऐसा सीक्रेट वेपन (छिपा अस्त्र) है कि कोई भी आर्टिस्ट इससे बच नहीं सकता। उसे मरना ही होगा। दो-एक वर्ष के लिए उसके प्रोग्राम बन्द हो जायेंगे। यहाँ के अच्छे-अच्छे आर्टिस्ट इसी

अस्त्र से मार दिये गये हैं ।

तभी दोनों ने देखा कि वन्दना को 'बंसरी' कहकर पुकारने वाले साजिन्दे महाशय ने एक लड़की आर्टिस्ट के साथ केन्टोन में प्रवेश किया ।

उन लोगों को अचानक वहाँ आया देख वे दोनों चुप हो गये ।

ड्युटी आफीसर बोले—

“आप क्या लेंगे ?”

“माफ कीजिये, मैं कुछ नहीं लूँगी ।”

“कुछ ले लीजिये, अभी प्रोग्रेस है । एनर्जी (शक्ति) आ जायेगी ।”

“आप नहीं मानते तो एक कप दूध मँगवा दीजिये ।”

आर्डर देकर ड्युटी आफीसर किसी जरूरी काम से दो मिनट के लिए बाहर चले गये ।

तब तक वे महाशय भी वन्दना के पास वाली मेज पर ठीक सामने आ बैठे और बोले—

“हाँ, भाई ! लाओ—लाओ—आज तो हम भी दूध पीयेंगे ! दूध भी क्या चीज है ? वाह……।”

बीच ही में वे लड़की आर्टिस्ट बोलीं—“चाय नहीं……कॉफी नहीं
……क्या, गॅवारू चोइस है ।”

वे साहब नाक के स्वर में बोले—

“भ्रमां, आजकल ए० आई०आर० पर आ-आकर ये ग्रेजुएट चिड़ियाँ बहुत चहकने-फुदकने लगी हैं ।”

वे स्वर मिलाती बोलीं—

“हाँ जी, और फिर केन्टोन में दूध पी-पीकर अंडे भी कम नहीं देती हैं ।”

हर एक बात सुनने, देखने की अपनी-अपनी सीमा होती है । वन्दना क्षुब्ध बैठी थी पर अब जो यह नया सिल-सिला शुरू हुआ तो मारे क्रोध

के तिलमिला गई। उसकी आँखों में शोले जल उठे। अनचाहे ही उसकी क्रुद्ध दृष्टि उस ओर चली गई।

ऐसे नोक-भोंक के मौके पर तो वे साजिन्दे महाशय रस-विभोर ही हो उठते हैं।

वन्दना के इस तरह देखने पर कोई गजल गुनगुना उठे। जिसका मतलब था कि “गुस्से में तुम्हारा चेहरा और ज्यादा खूबसूरत हो उठता है।”

यह सुनना था कि लगा जैसे बारूद में कहीं आग भड़क उठी है।

—एक धड़ाका !

—और सबने देखा कि वन्दना ने अपना गर्म दूध से भरा प्याला उठाकर उस साजिन्दे के मुँह पर दे मारा है।

कन्टीन में शोरगुल मच गया। वह ड्युटी आफिसर, जो खड़ा-खड़ा अपने एक मित्र से बातें कर रहा था, दौड़ा अन्दर आया। कुछ इधर-उधर के लोग भी इकट्ठे हो गये।

× × × ×

उस दिन वन्दना ने रात के नौ बजे जैसे ही अपना प्रोग्राम समाप्त किया वैसे ही उसे एक नोटिस मिला कि ‘मिस बिहेवियर’ (अशिष्टता) के कारण उसका प्रोग्राम एक वर्ष के लिए बन्द किया जाता है।

ठीक ही तो है। जो रेडियो स्टेशन के इस आनन्दी समाज में अपने को ठीक नहीं बिठा पाती, जो उस रसभरे वातावरण में आए दिन खटास ही भरती है उसे हट ही जाना चाहिए।

कुछ व्यावहारिक विज्ञानों ने टिप्पणी की—

“एक के लिए इतने सारे लोगों को हटा देना तो हृद दर्ज की बेवकूफी है। भला ऐसे भी कहीं काम चल सकता है। जिसे अपनी इज्जत का इतना ख्याल है, वह घर से बाहर ही क्यों निकले !”

आधी रात बीत गई है। मीरा सो रही है। कमरे में सन्नाटा है। पास ही कुर्सी पर सुधीर बैठा है। आज मीरा की तबियत ठीक है। इसलिए उस ओर से उसका मन निश्चिन्त-सा है। पर साथ ही रेडियो पर जो कुछ घट गया है, सो सब आकर वन्दना ने थोड़ी ही देर पहिले उसे बता दिया है।

जिस अपमान और परिताप को सहकर वन्दना रेडियो पर जाकर गाती रही है सो याद कर-करके उसकी छाती फटने लगती है। मारे क्रोध और क्षोभ के उसकी मुट्ठियाँ बँध जाती हैं पर करे क्या ?

सोचता है मीरा की तबियत जरा ठीक हो जाये तो वह दिन-रात लिखेगा। वन्दना से कहेगा कि वह अपनी थोसिस जल्दी ही पूरी कर डाले।

फिर सोचने की धारा मुड़कर जा पहुँची रेडियो स्टेशन की ओर—लेकिन वह कर ही क्या सकता है ? सरकारी मशीनरी से टकराकर अपना सिर ही फोड़ा जा सकता है—रेडियो स्टेशन ही क्या, सारे सरकारी महकमे ही भूट-मक्कारी के अड्डे हैं—

और अचरज यह है कि हमारे काँग्रेसी-मंत्री छाती फुलाकर इन्हीं कर्मचारियों को भारत के 'कर्मवीर सपूत' कहकर पुकारते हैं—जो एक दिन अँग्रेजी सरकार के एजेन्ट थे, वही हैं हमारी सरकार के ये कर्मवीर सपूत !

सहसा उसके कानों में मीरा के गले से निकलता घर-घराहट का स्वर सुनाई पड़ा। विचार टूट गया। वह चुपचाप बैठा उसके श्वेत चेहरे की ओर देखने लगा। उसने देखा कि मीरा ने धीरे-धीरे अपनी आँखें खोल दी हैं।

वे कुछ देर अपनी बुझती पुतलियों से सुधीर की ओर टकटकी लगाये देखती रही फिर धीरे से बोलीं—

“तकिये...के...नीचे लिफाफा है... ले लो...”

सुधीर ने उठकर वहाँ से लिफाफा निकाल लिया। वे डूबते स्वर में बोलीं—

“सोचती थी...यह पत्र आप तब पढ़ें जब मैं नहीं रहूँ...पर अब चाहती हूँ अभी...मेरे सामने...यहीं...”

सुनकर सुधीर काँप गया। उसने लिफाफा खोला और पहिली पंक्ति पढ़ी—फिर दूसरी—पढ़ते-पढ़ते लगता है जैसे रह-रहकर उसके सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ जाती है।

वह आगे पढ़ने लगा—

“न जाने क्या-क्या लिखे जा रही हूँ। जब तक जीऊँगी लिखती जाऊँगी—विराट के इस असीम समुद्र में—उसी की चंचल फेनिल लहरों पर तैरते हम दो बुलबुले हैं, जो उन्हीं के थपेड़ों को सह-सहकर रुलते-डुलते निकट आ गये हैं।

कौन जाने तूफान का कौन-सा भोंका कब हमें नेस्तनाबूद कर दे—कब सदा-सदा के लिए एक दूसरे की दृष्टि से ओझल हो जायें।

देखो, किसी दिन मैंने अपनी दीवाल पर यह आकाश-दीप शुक्रतारा अपने हाथों से ही बनाया था। उस दिन क्या स्वप्न में भी यह ध्यान आया था कि मैं इतनी जल्दी बुझ जाऊँगी और मेरे हाथों से बनाया गया यह आकाश-दीप यहाँ दीवाल पर ज्यों का त्यों जलता रहेगा

सच, कितना अस्थिर है मनुष्य का यह जीवन—जैसे लहरों पर रुलता-डुलता बुलबुला और कितने विराट है उसके सपने !

समझ नहीं पाती कि क्यों इस छोटे से जीवन के लिए लोग कैसी-कैसी धिनीनी बातें करते हैं—हत्या-भूठ-प्रपंच-लेकिन फिर सोचती हूँ—

सबके अपने-अपने दर्द हैं। नहीं तो जो मनुष्य है—इन्सान है, सो यह सब कैसे कर पाता है !

मेरे पापा इतनी जल्दी मेरी उस माँ को कैसे भूल गये कि जिनकी मौत पर पत्थर से सिर पटक-पटककर आत्म-हत्या तक कर लेना चाहते थे।

फिर सोचती हूँ वही बात—

कितना छोटा है मनुष्य का जीवन और कितना अस्थिर है उसका प्यार ! हो सकता है इसीलिए मुझे इस 'प्यार' से नफरत हो गई है, शायद इसीलिए पुरुष से—शादी से—देखो, मैंने कभी बताया था कि किसी को अचरज में डाल देना मुझे बहुत पसन्द है। सो आज भी जाते-जाते तुम्हें एक अविश्वसनीय अचरज में डाले जा रही हूँ।

सुनो—

I am desparately in love with you.

सच, जब मैंने तुम्हें देखा भी नहीं था तभी “सान्ध्य-दीप” पढ़कर उसके कृतिकार को मन ही मन पूजने लगी थी। कभी सोचती हूँ थोड़ा और जी पाती ! पर नहीं—यदि दस-बीस साल और जी लेती तो—तो क्या हो जाता ?

फिर धीरे-धीरे हमारा प्यार भी मर जाता और उस प्यार की लाश उठाये हम कहते—

“नहीं जी ! अब भी.....।”

इसलिए जो हुआ सो ही ठीक है।

लिखते-लिखते सोच रही हूँ—जो बात इतने सहज भाव से लिखे जा रही हूँ, सो शायद स्वस्थ होकर कैसे भी न लिख पाती।

देखो, कितने महीनों से मेरे पड़ोस में रह रहे हो, पर क्या किया मैंने ? बात भी तो मन भरकर नहीं कर पाई और अब जब कहीं दूर से

आता यह मृत्यु संगीत कानों में भर उठा है, तब जागा है जी ने का मोह !

अब आकर जान पाई हूँ कि—

Life and decay and death and all is love.

(जीवन, क्षय और मृत्यु फिर सब कुछ प्यार ही प्यार तो है)

जानती हूँ कि अब अधिक देर नहीं है पर कितनी बातें हैं कि कहे बिना जा नहीं पाती ।

सब जानते हैं कि डाक्टर की दवा मुझे जिला रही है पर नहीं—
मैं तो कभी की मर चुकी हूँ । मैं अपनी धमनियों में तब तक प्राण बसाये रखना चाहती हूँ कि जो अन्दर भरा है सो सब बाहर न निकल जाये ।

सुनो, आज कितना बड़ा चैन साथ लिए जा रही हूँ कि अपने मन-
आत्मा की जिस बात को वर्षों से छिपाती आई हूँ सो तुमने जान ली है ।
आज तुम्हारा यह जान लेना ही मेरे लिए कितने बड़े सन्तोष की बात है ।

उस दिन रोज्जेटी की इस पंक्ति को - उसके जीवन की इस अनुभूति
को जो आज मुझे हो रही है, पढ़कर मैं कितना हँसी थी—उस दिन
पढ़ा था—

I love you and you know it—at last.,

This comfort is mine own in all my pains.

और पढ़ कर हँसते-हँसते आँखों में आँसू आ गये थे । समझ ही न
पाती थी कि इस जानने की भला इतनी बड़ी क्या महत्ता है ?

सच, जब कोई चिकनी जमीन पर फिसलता है तो हम दर्शक हँस
पड़ते हैं पर जब हम खुद फिसलकर गिरते हैं तो आहें भर उठते हैं ।
तब चाहते हैं कि हमें देखकर कोई भी न हँसे ! मनुष्य के जीवन का यह
कैसा निर्मम सत्य है !

आज लगता है कि तुम्हारे इस जान लेने से ही जैसे मेरे जीवन के
समस्त दुःख-दर्द धुल पुँछ गये हैं ।

जैसे आज मैंने मुक्ति पा ली है। वस, अब रुकती हूँ। इससे ज्यादा मैंने कभी नहीं चाहा—चाहूँगी भी नहीं—बस—

मुन्ना को—वन्दना को देखना—आज बहुत उदास होकर रेडियो स्टेशन से लौटी है। न जाने क्या हुआ होगा ? अब तुम्हारे ही सहारे है—

आह ! इस तरह जाना भी कितना क्लेशकर होता है—सबसे दूट कर सदा-सदा के लिए मिट जाना—कैसी अवशता है पर क्या करूँ ? अच्छा विदा ! आह ! वि.....दा....

तुम्हारी अपनी ही

—मीरा

गर्म तबे पर ठंडा पानी छिड़कने के बाद जो होता है, वह हम सबने देखा है पर धरती के भीतर धधकते ज्वालामुखियों में जब सागर का शीतल पानी जा समाता है और तब जो भूचाल-भूकम्प आता है, उसे हममें से बहुत थोड़े जानते हैं।

कितना बड़ा वेग होता होगा उस भूकम्प में जो इस अचल पृथ्वी को—नदी-पर्वतों सहित कँपा डालता है !

सुधीर ने आज तक जाने थे घृणा—उपेक्षा—अपमान लांक्षना के विष-दंश !

आज उन्हीं विष-ज्वालाग्रों से धधकते अंतर में जब मीरा के स्नेह का शीतल रस-स्रोत आ फूटा तो उसे लगा जैसे सहसा उसके अन्दर ही अन्दर सहस्र-सहस्र भूकम्प उठ खड़े हुये हैं।

उसके कमजोर फेफड़े प्यार के उस दर्द को—स्नेह के उस आवेग को कैसे भी न सह पाये। उसे खाँसी का दौड़ा आया और मुँह से गाढ़ा-गाढ़ा ढेर सा खून निकल पड़ा।

सुधीर के मुँह से निकलते उस खून को देखकर मीरा की आँखें फटी की फटी रह गईं। तभी पास के कमरे से वन्दना ने कमरे में प्रवेश किया।

सुधीर टी० बी० के सरकारी अस्पताल में दाखिल हो गया है। उसे अस्पताल में आए सात-आठ दिन ही हुए हैं किन्तु इतने थोड़े दिनों में ही उसने जान लिया है कि कहने को यह सरकारी अस्पताल खैराती है, कि यहाँ मुफ्त इलाज होता है पर यहाँ मरीज के प्राणों का मूल्य अलग-अलग आँका जाता है।

प्राणों का यह मूल्य वहाँ के डाक्टर-नर्स, यहाँ तक कि भाड़ लगाने वाला जमादार तक दो एक दिन ही में ठीक-ठीक आँक लेता है और फिर इलाज और तीमारदारी भी उसी मूल्य को ध्यान में रखकर की जाती है।

सुधीर के पास ही एक मरीज की चारपाई बिछी है। वह किसी गांव से आया है।

प्रायः वे एक दूसरे को चुपचाप लेटे-लेटे देखते रहते हैं।

एक दिन वही पड़ोसी बोला—‘भइया ! कुछ करो । ऐसे नहीं बचोगे । यहाँ तो बिना पैसे के, बिना सिफारिस के जमादार तक गाली देता है । नरक है भइया पूरा नरक !’

सुधीर बोला—“तुमने कुछ किया ?”

वह खांसते-खांसते बोला—“हां, भइया ! बिना करे कैसे चलता—हमारे गांव के एक एम्पी (एम० पी०) हैं उनकी किसी मंत्री के यहाँ पहुँच हैं। उन्होंने यहाँ के बड़े डाक्टर को फोन कर दिया, बस भइया ! यहाँ तो चहल-पहल मच गई !!

जे चढ़ें, बिछौना, खाना-पीना सब कुछ बदल गया। वह जमादार का बच्चा पहिले ‘तू-तू’ करता था अब ‘आप-आप’ ‘साब-साब’ करता रहता है”

कहते-कहते उसे रोष आ गया। उसी आवेश में बोला—

“यहाँ तो सब कुत्ते हैं ! कुत्त !! जितना बड़ा रोटी का टुकड़ा फँको, उतनी ही जोर से पूँछ हिलाते हैं।”

सुधीर मुस्काता सा बोला—

“लेकिन भाई ! यहाँ तो अपने खाने के लिए ही टुकड़ा नहीं है। उन कुत्तों के लिए कहां से लाऊँ ?” कहते-कहते उसे लगा जैसे पीठ की ओर कोई आ खड़ा हुआ है।

उसने गर्दन घुमाई। तभी देखा वन्दना और मुन्ना बिछौने के पास आ खड़े हुए हैं।

देखकर सुधीर मारे आत्मग्लानि के गड़ गया। सोचने लगा क्यों उसके मुँह से ऐसी बात निकल गई। इन्होंने भी सुनी होगी। क्या कहेंगी अपने मन में ?

मनुष्य का कुछ स्वभाव ही ऐसा है कि अपरिचित व्यक्तियों से बात करते समय वे अपने अन्तर के सब आवरण हटा देते हैं।

यात्रा-प्रवास में अपरिचित साथियों से कंसी-कंसी अच्छी-बुरी बातें हम कह बैठते हैं कि जिन बातों को अपने परिजनों के सामने कहना पड़े तो लाज के मारे मर जायें—

सुधीर ने भी वही किया था किन्तु जब उसे पता लगा कि वन्दना ने सब कुछ सुन लिया है तो मारे लाज के उसका मुँह फक रह गया।

× × × ×

वन्दना जब घर लौटी तो उसने सारी बात अपनी दीदी को बताई।

वन्दना घर का कील काँटा बचकर जब बाजार से लौटी तो उसके पास बारह सौ रुपये थे।

अब अस्पताल में सुधीर की देख-रेख भी इस तरह होने लगी है, जैसे उस शरीर में बसने वाले प्राणों का मोल सट्टे में बदलते मूल्यों

की भाँति अचानक बहुत ऊँचा उठ गया है किन्तु सुधीर उस अचानक हुये परिवर्तन का कारण कैसे भी न समझ पाया ।

एक दिन वही पड़ोसी अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराता बोला—

“क्यों भइया ! लगता है किसीसे सिफारस करा ली है ।”

“नहीं भाई ! सिफारिश तो नहीं, करवाई, पर लगता है कुछ हुआ जरूर है ।”

× × × ×

सुधीर मौत के मुँह से निकल आया है । अपनी उतनी बड़ी बीमारी से वह कैसे बच गया इस बात पर डाक्टरों को भी कम आश्चर्य नहीं है ।

यह ठीक है कि वन्दना से रुपये पाकर उसकी सार संभाल ठीक होने लगी थी, पर उसके बच जाने की आशा किसी डाक्टर को भी न थी ।

डाक्टरों को विज्ञान में विश्वास है । विज्ञान के आधार पर बनी औषधियों में उनकी आस्था है । मरीज बच गया तो समझते हैं दवा ने बचा लिया है और मर गया तो कहते हैं कि रोग ही इतना प्रबल था ।

वे कभी यह समझ ही नहीं सकते कि जब उनकी औषधियाँ निष्फल सिद्ध हो जाती हैं तब किसी के प्राणों की पुकार ही उस रोगी को देती है जीने का नया संबल-आत्मबल !

तब वही आत्मबल ही एक मात्र सहारा होता है, जिसको लेकर रोगी एक दिन उस प्रबल रोग को जीत लेता है और खोये प्राण वापस छीन लेता है ।

मीरा के बुझते प्राणों की पुकार ही उसे जीवित लौटा लाई है, नहीं तो ऐसी स्टेज पर पहुँचे मरीज बचते नहीं हैं । ऐसा डाक्टरी की सब किताबों में लिखा मिल जाता है ।

सुधीर जब अस्पताल से घर लौटा तो दो फेफड़ों की जगह दुनिया में लड़ने के लिए उसके पास केवल एक ही फेफड़ा शेष रह गया था ।

इतने लम्बे समय के बाद वन्दना के साथ अपने कमरे में लौटा तो देखा कि उसके कमरे की एक बार फिर काया-पलट हो गई है दीवारों पर हलका नीला रंग हो गया है । सब कुछ साफ उजला है । करीने से सजा हुआ—सब में व्यवस्था है, सुरुचि है ।

साँझ का समय है । कमरे में चन्दन की सुगन्ध है । उससे उसके शरीर में एक ताजगी-सी आ गई । अस्पताल के कमरे में न जाने कौसी बदबू-सी बनी रहती थी ।

तभी उसने देखा—एक स्वस्थ सुन्दर युवक उसके कमरे के बाहर आ खड़ा हुआ है । उसे वहाँ खड़ा देख वन्दना के चेहरे पर मारे लाज के लाली दीड़ गई ।

सुधीर ने वन्दना की ओर देखा । अन्दर ही अन्दर एक कौतूहल-सा जागा और एक हत्की-सी मुस्कान उसके होठों पर बिखर गई ।

वन्दना कमरे से बाहर चली गई । कुछ देर उन दोनों के रोष-क्षोभ-भरे कण्ठ-स्वर कानों में दूर से आते रहे । फिर धीरे-धीरे वे क्रुद्ध-स्वर दूरी के अन्तराल में डूब गये ।

जब वन्दना कमरे में वापस आई तो लगा जैसे वह अभी-अभी रो-धोकर आई है । उस सम्बन्ध में उससे कुछ भी पूछने का साहस नहीं हुआ ।

वह आकर चुपचाप सुधीर के बिछौने पर बैठ गई ।

दोनों में से कोई भी कुछ देर तक न बोला। तब सुधीर ने कहा—
“तुम्हारी दीदी की तबियत आज कैसी है?”

“अच्छी है। आपको बुला रही है। कल पापा की चिट्ठी आई थी। मुझे नहीं दिखाई। न जाने क्या लिखा है।”

“अच्छा चलता हूँ। जरा साँस ले लूँ।”

वन्दना बोली—

“डाक्टरों ने कहा है कि थोड़े दिनों के लिए आपको किसी पहाड़ पर जाना चाहिए।”

सुनकर सुधीर धीरे-धीरे मुस्कराया फिर मुस्कराता ही बोला—

“वन्दना! तेरा यह भाई तेरी किसी बात में बाधा नहीं डालेगा फिर मुझे पहाड़ पर क्यों भेज रही है?”

सुनकर वन्दना का चेहरा फक पड़ गया। उस ओर देखकर सुधीर को लगा—जैसे उसका सरल-सहज विनोद शूल बनकर वन्दना के जा चुका है।

उसने देखा—

वन्दना उठकर दरवाजे के पास जा खड़ी हुई है, फिर धीरे-धीरे कमरे से बाहर फैली रात की काली अंधियारी में खो गई।

कुछ देर वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा। एक गहरी उसाँस छोड़ता उठा। शरीर को चादर से अच्छी तरह ढाँपकर पड़ीस की ओर चल दिया।

रात के नौ बजे होंगे। जब सीढ़ियों से उतरकर मीरा के कमरे की ओर मुड़ा तो वह विशालकाय कुत्ता थोड़ा सा भौंका, गुराया और शांत हो कर बैठ गया। लगता है मुन्ना सो गया है। कहीं से कोई आवाज नहीं आ रही है। सब ओर सन्नाटा है।

वह जैसे-जैसे मीरा के द्वार की ओर बढ़ता जा रहा है, उसके अन्दर ही अन्दर न जाने कैसे तूफान, कैसी आँधियाँ उठती जा रही हैं।

जब मीरा के द्वार पर जा खड़ा हुआ तो लगा जैसे अन्दर के समस्त तूफान शान्त हो गए हैं।

उसने देखा—

मीरा शान्त बिछीने पर लेटी है। उसकी पलकें बन्द हैं। पास ही रखे दीपदान का धीमा प्रकाश उसके श्वेत चेहरे पर झिलमिला रहा है। लगता है जैसे—

मृत्यु-स्नान से जीवन की समस्त क्लान्ति धोकर कोई पुण्यात्मा साकार विश्राम कर रही है।

वह धीरे से आया और पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गया।

तभी उन्होंने आँखें खोली। कुछ देर उसे अपलक नयनों से देखती रहीं, फिर बोलीं—

“इतनी देर कहां रहे?”

“न जाने क्यों तुम्हारे पास आते मुझे भय लग रहा था।”

सुनकर वे मुस्कराईं फिर दीवाल पर बने उस आकाश-दीप को देखती-देखती बोलीं—

“डरो मत—मैं तुम्हें जलाऊंगी नहीं... चुपचाप बुझ जाऊंगी।” कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं। फिर शान्त-स्वर में बोलीं—

“जानते हो आज क्या है?”

“वसंत पंचमी।”

“सो तो है साथ ही और भी कुछ है!”

“क्या...?”

“आज मेरा जन्म-दिवस है। तभी तो तुम आज लौट आये हो।”

“और न लौटता तो।”

“लौटते कैसे नहीं—जब कोई किसी को मन-प्राण से पुकारता है, तब क्या कोई कहीं रुक पाता है!” कहकर वे झुप हो गईं फिर बोलीं, “इतने ही दिनों में मैं कितनी बड़ी कवियित्री बन गई हूँ... सुनो...—अभी

लेटी-लेटी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। कमरे के इस अन्धकार में मेरे पास अकेला यह दीपदान जल रहा था। मुझे लगा जैसे तुम्हीं क्या मेरे दुःखी जीवन के दीपदान नहीं हो ? और मैं कविता लिखने बैठ गई—पढ़ लो—यह मेज पर पड़ी है—और भी बहुत लिखा है—कभी पढ़ लेना ।”

सुधीर ने हाथ बढ़ाकर कागज का वह टुकड़ा उठा लिया। पेन्सिल से लिखी कुछ पंक्तियाँ वह पढ़ने लगा—

ओ अन्धकार के दीपदान !

जब संध्या की इस दीवट पर, जीवन का वैभव बुझता था ।
बीते युग का मीठा सपना, भर-भर पलकों से भरता था ॥
तब नीरव नील-हृदय में आ—

बिखराये तुमने करुण-गान ।

ओ अन्धकार के दीपदान !

निर्मम पीड़ा की प्याली में, सोती आहों का गरल भरा ।
थीं मेरे आहत क्रन्दन से, रे ध्वनित दिशाएँ और धरा ॥
तब जीवन-मधु दुलका-दुलका,

करने आये तुम प्राण-दान ।

ओ अन्धकार के दीपदान ॥

अपने गीले उद्गारों का, मैं हार तुम्हें पहिनाती हूँ ।
अपनी इन बुझती आँखों में, मैं मंगल-दीप जलाती हूँ ॥
इन पुन्य-पलों में संसृति के—

बन आये हो तुम मूर्तिमान !

ओ अन्धकार के दीपदान !!

पढ़कर वह अपने ही में डूब गया। कुछ बोला नहीं—तभी वे बोलीं—“चुप क्यों हो ? बोलते क्यों नहीं ? सुनो, आज तुमसे आशीष मांग रही हूँ। दोने ?”

थोड़ी देर सुधीर चुप बैठा रहा। फिर कागज खींचकर कलम से उस पर कुछ लिखा और मीरा की ओर सरका दिया। मीरा ने पढ़ा—

“जब तक हमारी आत्माओं की मुक्ति न हो, हमारा यह साथ अमर, अमिट हो—आज यही मेरी कामना है ! यही आशीष है !”

मीरा ने उसके नीचे लिखा—“और मेरी कामना है कि हमारी आत्माएँ कभी भी मुक्त न हों।”

पढ़कर सुधीर मुस्कराया फिर गम्भीर होकर बोला—

“बन्दना कहती थी कि कलकत्ते से कोई पत्र आया है।”

“हाँ, कल आया था।”

“क्या लिखा है ?”

“लिखा है कि उसी डाक्टर को लेकर वे जल्दी ही दिल्ली आ रहे हैं और यह कि मेरे इस शरीर का विक्रय निश्चित है। सुनकर सुधीर काँप गया।” वे बोलीं—“डरते हो ? लेकिन मैं तो नहीं डरती !”

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा फिर सुधीर बोला—

“यह डाक्टर कौन है ?”

“पिताजी का मित्र है। कभी स्विटजरलैंड घूमने आया था। वहीं पिताजी से जान-पहिचान होगई थी।”

“लेकिन तुम तो कहती थी···।”

“हाँ, फिर कलकत्ते भी आया था—पहिले किसी दूसरे शहर में उसका अपना नर्सिंग होम था। अब कलकत्ते में कोठी खरीदी है—वही प्रेक्टिस करता है···।” कहते-कहते उन्होंने एक लम्बी उसाँस ली और चुप हो गईं।

कुछ देर दोनों अपने ही में डूबे बैठे रहे। सुधीर में चेतना लौटी। उसने मीरा की ओर देखा—वे पलक बन्द किये चुपचाप लेटी थीं। उनके होंठ बार-बार हिल उठते हैं, जैसे कुछ कहना चाहती हैं, पर कह नहीं पाती।

तभी धीरे-से बोलीं—“सुनो ! जाने कितनी बातें तुमसे कहने की सोची थीं पर अब लगता है कुछ भी कहने को शेष नहीं है। तुम सब

जानते हो और फिर वे लोग आज ही आ पहुँचे तो हमारा यह मिलना अन्तिम ।” बीच ही में वह बोला—“आज ही...लेकिन मीरा ! यह नहीं हो सकता...यह मैं नहीं होने दूँगा ।”

सुनकर वे मीठा-मीठा मुस्कराईं । बोलों—“नहीं होने दोगे—लेकिन कैसे ? भाई ! दुनिया के नाते में जो मेरे जन्मदाता हैं, वही तो इस शरीर के अधिकारी हैं.....तुम कौन-सा अधिकार लेकर लड़ोगे मेरे लिए..... ।”

सुधीर चुप रहा । तब वही बोलों—“सुधीर बाबू ! रोज सोचती थी कि लौटोगे तो एक बात पूछूँगी ।”

उसने भरपूर स्वर में कहा—

“पूछिये !”

“सुनो ! वन्दना रोज अस्पताल जाती थी । लौटकर तुम्हारी बीमारी के बारे में भी बताती थी पर मैं तो उससे पूर्व ही सब जान लेती थी । इस शरीर को यहाँ छोड़ कर, प्रतिफल, प्रतिक्षण तुम्हारे साथ ही तो रहती थी । तुम्हें भी वैसा लगता था या नहीं ? बोलो.....बताओ.....।”

सुधीर ने उत्तर नहीं दिया—थोड़ी देर चुप बैठा रहा फिर कुर्ते की जेब से कुछ कागज निकालकर मेज पर रखता बोला—

“यह रक्खे हैं, पढ़ लेना..... ।” कहते-कहते उठा और द्वार की ओर बढ़ गया । फिर मुड़कर बोला—

“देखिये, दुनिया के नाते से मेरा कोई अधिकार है या नहीं, सो मैं नहीं जानता, पर यहाँ से तुम्हारी मर्जी के खिलाफ तुम्हें कोई कहीं नहीं ले जा सकता—यह मैं कहे जाता हूँ ।”

“सो मैं जानती हूँ ।” कहते-कहते वे गम्भीर हो गईं ।

सुनकर कुछ देर वह जहाँ-का तहाँ खड़ा रहा फिर उनकी ओर बढ़ा और बोला—

“कहती थीं बहुत कुछ लिखा है सो सब कहाँ है ?”

“यह लीजिये ।” कहते-कहते तकिये के नीचे से एक बड़ा लिफाफा निकाल कर उसे दे दिया ।

उस ढलती रात में वे दो आत्माएँ शरीर के माध्यम को छोड़कर एक दूसरे की अनुभूतियों में घुलमिल गईं ।

सुधीर ने कभी अस्पताल के बिछौने पर जो कुछ लिखा था सो मीरा पढ़ने लगी—

प्राण !

यह लिखते अब मुझे शर्म नहीं आती कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ । इतना प्यार कि जैसे हमारे शरीरों की बाधा भी अब मिट गई है ।

अस्पताल की यह पहली रात है । कमरे में अन्धकार और सन्नाटा है, पर लगता है जैसे रात्रि के इस अंधकार को चीरकर तुम प्रकाश-तरंग की तरह मेरे रोम-रोम में आ समाई हो ! इसीलिए—

प्राण !

यह लिखते अब मुझे शर्म नहीं आती कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ ।

× × × ×
चिर प्रेयसि !

डाक्टर कहता है—एकसरे का चित्र बताता है कि मैं अपना एक फेफड़ा खो चुका हूँ और यह कि मेरे लिए बिछौने पर हिलना-डुलना भी कोई बड़ा संकट ला सकता है पर मैं कहता हूँ, “मूर्ख है डाक्टर !

और

झूठा है उसका विज्ञान ! एकसरे !!”

मुझे तो लगता है जैसे रात होते ही हम दोनों दो टूटे नक्षत्रों की भाँति साथ-साथ आकाश में तैर उठते हैं । न जाने कितने लोक, लोकान्तरों में तैरते आकाश-गंगा में साथ-साथ स्नान कर शुक्रतारे की उगन में फिर धरती पर लौट आते हैं !

और चिर-प्रेयसि !

डाक्टर कहता है—एक्सरे का चित्र बताता है कि मैं अपना एक फेफड़ा खो चुका हूँ..... ।

×

×

×

×

प्राण !

हिन्दू-दर्शन कहता है—शरीर नश्वर है ! क्षण-भंगुर है !!

लेकिन आज मुझे कैसे भी इस बात पर विश्वास नहीं होता । मुझे तो लगता है प्रेमियों के शरीर कभी नहीं मिटते ! बस, रूपभर बदल जाता है !

ग्रीष्म की दुपहरियों में उठते बवंडर ! क्या उन्हीं के तप्त उच्छ्वास नहीं हैं ?

आँधी में आकाश पर छा जाने वाले धूलिकण ! क्या उन्हीं के असंख्य रूप नहीं हैं ?

आकाश में भपकते तारों में, क्या उन्हीं हृदयों के स्पन्दन नहीं हैं ? कौंधती बिजली में उन्ही की तड़प और उमड़ते काले बादलों में उन्हीं के महामिलन का आह्लाद नहीं है ?

और—

प्राण !

दर्शन कहता है—शरीर नश्वर है ! क्षण-भंगुर है !!

×

×

×

×

प्रियतमे !

आज वसन्त पंचमी है.....आज ही के दिन मैंने . . .

×

×

×

×

बीच ही में नीचे हॉर्न बजाती कई मोटर गाड़ियाँ महान के द्वार पर आ खड़ी हुईं । साथ ही नीचे के बन्द किवाड़ों की खटखटाहट के साथ सुनाई पड़ा एक पुरुष कंठ-स्वर—

“मी.....रा.....! व.....न्द° ना.....!!”

वन्दना दौड़ी-दौड़ी कमरे में आई। हाँफती-सी बोली—“दीदी !
लगता है पापा आये हैं.....”

× × × ×

मीरा ने जो लिफाफा सुधीर को दिया था उसमें छोट बड़े अनेकों
कागज के पुर्जे थे—वह पढ़ने लगा। मीरा ने लिखा था—

“सोचती हूँ—खतरे की सीमा से पार महाकाल द्वारा
तुम्हारे लिए भेजी उस मौत की चादर को किसी तरह में ओढ़ लूँ !

तुम्हारे त्राण ही में क्या मेरी मुक्ति नहीं है ?

तुम यदि जीवित हो तो मेरी आत्मा तुम्हें चौदह भुवनों में से—
असंख्य जीवों में से खोज लेगी—कभी ठगायेगी नहीं— और ज्योति में
लौ की भाँति सदा-सदा के लिए तुम्हीं में घुल जायेगी ।

× × ×

में इस दुनिया में जब नहीं रहूँगी तब उस तड़प में—तुम कितना
सुन्दर लिखोगे.....तब तुम्हारे थके हाथों पर मेरी प्यासी आत्मा
कहीं से लालसा के दो बूँद गिरा देगी और तुम श्रम-कण समझ पोंछ
लोगे —

में तुम्हारी थकी अँगुलियों को दुलराऊँगी, और तुम वायु का शीत-
स्पर्श समझ उन्हें अपने शाल में छुपा लोगे—

तब एक तड़प बनकर मैं तुम्हारे प्राणों को छटपटा दूँगी—
कि मैं मरी नहीं—

कि मेरी हत्या की गई है—

कि मेरी जैसी न जाने कितनी लड़कियों की हत्या हो चुकी है—
हो रही है...

तब—

रातों के एकाकी साधक की तरह तुम फिर अपनी कलम उठा लोगे ।

सच ! कितना सुन्दर लिखोगे तब तुम ! मैं तो अभी से देख रही हूँ !!

×

×

×

देखो, जब मैं नहीं रहूँगी तब—

तुम्हारे इस मानस-उपवन में, ऋतु-ऋतु के न जाने कैसे-कैसे भाव-फूल खिलेंगे । वह गुलजार हो उठेगा—जिसमें पतझड़ भी शुभ्र हिम-पात से खूबसूरत हो उठेगा—तब मन्थर पवन-सी मैं फूल-फूल पर मडराती तुम्हारे चारों ओर आकर छा जाया करूँगी !

×

×

×

×

सुन

कभी शून्य निशीथ में बिछीने पर लेटे-लेटे तुम्हें सुगन्ध आये—पास में रजनी गंधा न हो—बेला-जूही जैसा कोई फूल भी न हो, तो समझना वे मेरी अतृप्त निश्वासें ही हैं, जो तुम्हारे शरीर, रोम-रोम को छू लेना चाहती हैं !

कि—

मैं तुम्हारे प्राणों में बस जाना चाहती हूँ !!

×

×

×

आह !

आज मेरे प्राण तुम्हारे आलिंगन के लिए छटपटा उठे हैं किन्तु शरीर के माध्यम से नहीं]। वह भी आलिंगन क्या जिसमें मात्र दो शरीर मिलें —

मैं तो तुम्हारे ही शरीर में समाकर तुम्हारे रोम-रोम का आलिंगन चाहती हूँ ।

तब—

तुम्हारे दिल का दर्द !

और—

मेरी आत्मा का असीम सूनापन !!

दोनों का वह आलिगन, महामिलन कितना विराट् होगा—कितना
अलौकिक ! और भव्य!!

सच, अपने इस अनौखे आलिगन की बात सोच-सोच कर मैं आज
पागल हो उठी हूँ ।

× × × ×

देखो !

मेरी मृत्यु के बाद—

जब कहीं भी मैं दिखाई न पड़ूँ तो तुम आँखें मूँद लेना । तब तुम
देखोगे कि मैं साकार छाया-सी तुम्हारे समीप आ खड़ी हुई हूँ ।

× × × ×

मेरे मूर्तिकार !

याद है वह अनुभूति ! जिसे तुमने अपने किसी उपन्यास में चित्रित
किया है—

The sorrow that endureth for ever और उसके
विनाश में से निर्मित The pleasure that abideth for a
moment—

सच, आज मेरे प्राण उसी चिर-दुःख में से फूटे क्षणिक सुख के लिए
मचल-मचल उठते हैं ।

× × × ×

प्राण !

जब तुम्हारे पीले मुख पर चिन्ता की काली छाया देखती हूँ तो
रह-रहकर मन में एक ही बात उठती है कि मैं सीप की भाँति तुम्हें
अपने अन्तर में छिपा लेती ।

तब—

संसार के इन हिंसक जीव-जन्तुओं से दूर मेरे अन्तर में बंटे तुम मोती की भाँति निरापद जगमगाते रहते ।

सोचती हूँ—

क्या मैं तुम्हारी सीप ही नहीं हूँ ?

क्या मोती की तरह आज तुम मेरे हृदय में नहीं जगमगा रहे हो ?

और फिर एक दिन जब—

तुम्हारी आभा को लेकर दुनिया में जहाँ-तहाँ चर्चा होगी—
सम्मान होगा—

तब—

जीवन की लहर से दूर फँकी जाकर कहीं मौत की चट्टान पर
चुपचाप पड़ी मैं सीप निरखूँगी तुम्हारा वह सम्मान ! यशगान !!

×

×

×

सुनो !

अब तो मेरा होना, न होना तुम्हारे ही लिए है ।

पर अब मैं मुक्ति चाहती हूँ !

दे दो न !

प्राण.....तम !

अब तो कैसे भी जिया नहीं जाता !

×

×

×

आज—

न जाने किस जन्म की रह-रह कर याद हो आती है ! जब एक ही
परिधि में बँधे दो नक्षत्रों की तरह हम सारे विश्व की सीमा नाप
आते थे !!

×

×

×

प्र म के इस पुनीत मंदिर में मेरी व्यथा रात-रातभर मणि-दीप

की भाँति जलती रहती है और कभी आँखें बरसाती हैं आँसुओं का नैवेद्य ! आज यही है मेरी पूजा ! यही है मेरी अर्चना !!

× × ×

देव !

तुम कब लौटोगे ?

तुम्हारी प्रतीक्षा में शरीर का यह बोझ उठाते-उठाते मैं थक गई हूँ ।

आह ! अब तो कैसे भी नहीं सहा जाता !

× × ×

आह !

क्यों ऐसा हुआ ?

क्षितिज की भाँति दृश्य होकर भी तुम इस जीवन में मेरे लिए क्यों अलभ्य रहे ?

× × ×

यह क्या हुआ है मुझे ?

जब उमड़-धुमड़कर आकाश में बादल बरस पड़ते हैं तो मैं फूँस की छान की तरह रो पड़ती हूँ और जब वे चले जाते हैं तो छान की 'उड़लाती' की तरह घंटों बूँद-बूँद आँसू टपकाती सिसकती रहती हूँ !

× × ×

जानती हूँ कि तुम भी मन-ही-मन मुझे प्यार करते हो—
लेकिन—

समझ नहीं पाती कि—

मैं उसे ले क्यों नहीं पाती ? क्यों है वह मेरे लिए अलभ्य .

आज जो मैं कहना चाहती हूँ वह कैसे भी कह नहीं पाती—न जाने कितना लिख गई हूँ और लिख-लिखकर कितना-क्या कलम की नोक से काट दिया—ऐसा मेरा स्वभाव कभी नहीं रहा पर आज यही किये जा रही हूँ—

और तब-अपने आकाश-दीप उस शुक्रतारे की उगन में आज कलम से अनायास यह लिख गया है— लगता है शायद यही मैं कहना चाहती थी—

मैं 'मल्हार' गाती हूँ प्रियतम !

पर 'विहाग' क्यों बन जाता है ?

क्यों मेरे जीवन का सुख-पल,

दुःख-ज्वाला में गल जाता है ?

मेरी निश्वासों को ढो-ढो, धीरे-धीरे दिन ढल जाता ।

आँखों की विष-ज्वाला पी-पी, जब चँदा नभ में घुल जाता ॥

मेरी पीड़ा बुझ-बुझ जाती—

दर्द धूम बन छा जाता है ।

मैं मल्हार..... ॥

अलस उनीचे इन पलकों में, सरस सजीले स्वप्न सजाऊँ ।

पतझर में सावन रच लूँ मैं, शापों को वरदान बनाऊँ ॥

ओस बनी जब दुलकूँ उर में—

फूल धरा पर भर जाता है ।

मैं मल्हार..... ॥

× × ×

सुनो !

आज की मेरी इस बात पर कोई करेगा विश्वास ? कि—

इस राख में भी न जाने कहाँ वासना की चिनगारी चमक उठी है !

आज वसन्त पंचमी है ! और मेरा जन्म दिवस !!

आज ही के दिन तो मेरी पलकें खुली थीं । स्यात् इसीलिए मेरे बुझते प्राणों में—मेरे रोम-रोम में न जाने यह कैसा उन्माद जाग उठा है । जो चाहता है—

तुम्हें भर लूँ प्राणों में प्राण !

आज मधु ऋतु का ले नवहार ।

करूँ मैं अपना ही शृंगार ॥

माँग में भर यह स्वर्ण-पराग ।

भाल पर रचलूँ अमर सुहाग ॥

साँस में साँस, प्राण में प्राण ।

गूँजता रहे युगों तक गान ॥

तुम्हें भर लूँ प्राणों में प्राण !

लिखते-लिखते लगता है कि अब अन्त आ चुका है—साँस भी पूरी तरह से नहीं ले पा रही हूँ। चाहती हूँ—आज तुम्हें देख पाती—लेकिन कहाँ-कैसे ?

×

×

×

प्रियतम !

लगता है अब तुम नहीं आओगे—मरने से पूर्व मैं अपनी एक कामना लिखे जाती हूँ ।

सुनो !

जब मेरा यह शरीर चिता में जलकर भस्म हो जाये तो तुम मेरी उस भस्म को ले आना और उसमें बोना नर्गिस के फूल ।

प्राण !

तब उसकी भीनी गंध—

और स्निग्ध स्पर्श में—

मैं सदा तुम्हारे समीप रहूँगी

उस सबको पढ़कर सुधीर चुपचाप आँखें बन्द किये बिछीने पर लेट गया । आज उसने पहिली बार जाना कि—

उस भरते फूल में भी कितना घना जीवन भरा है !

कितनी तृष्णा ! और कितनी चिरन्तन प्रणय-कामनायें !!

कि—

उसका भी अपना कहीं छोटा-सा नीड़ है ! जहाँ अपने शिथिल क्षणों में बसेरा पा सकता है !

फिर एक क्षण भी वह अपने कमरे में न ठहर पाया । वह चल पड़ा अपने उसी छोटे नीड़ की ओर !

मीरा के कमरे में जब पहुँचा तो देखा वह शान्त बिछीने पर लेटी हैं और पास ही एक आराम कुर्सी पर वन्दना सो रही है ।

उसके सिरहाने छोटी-सी मेज रखी है, जिस पर एक गुलदस्ते में नरगिस के ताजे फूल सजाए गये हैं—उनकी भीनी गन्ध से कमरा भर गया है ।

कमरे में दूसरी कुर्सी नहीं थी । वह खड़ा-खड़ा अपलक मीरा के उस श्वेत शान्त चेहरे को देखता रहा ।

सोचने लगा कि—

इस नीरव-ज्योति में भी कितने-कैसे ज्वालामुखी धधक-धधक कर बुझ गये हैं !

तभी एकाएक वे शान्त पलकें खुल गईं । वे स्थिर-अकम्प आँखें कुछ देर सुधीर को देखती रहीं और सुधीर खड़ा था—स्तब्ध ! विमूढ़ !!

वे धीमे से बोलीं—

‘यहाँ आओ !’

सुधीर उनके बिछौने के निकट जा खड़ा हुआ। बोली—

“बैठ जाओ।”

वह बिछौने पर चुपचाप बैठ गया।

मीरा ने तकिये के नीचे से एक कागज निकाला—धीरे से सुधीर की ओर बढ़ा दिया। बोली—

“पढ़ लो !”

वह पढ़ने लगा—

“मेरे कागज-पुर्जे लेकर जब तुम चले गये तो सहसा मुझे याद आई स्विटजरलैंड के प्रवास की बात !

उस दिन मैंने भील के किनारे बैठकर तुम्हें चिट्ठी लिखी थी फिर बड़ी देर तक वहीं बैठी रही थी। जब अपने हॉटल की ओर लौटी तो देश-देश के सैलानियों से वह सड़क भर गई थी।

उस सड़क पर चलते-चलते मेरे मन में एक बात उठी कि—

इतनी बड़ी भीड़ में भी यह बेचारी सड़क, क्या नितांत अकेली ही नहीं है ? क्यों है ऐसी निरीह एकाकी ?

तब अन्दर से ही जवाब मिला कि—

“राहगीरों के अनगिनत पैरों का बोझ तो वह उठाती है पर मन तो एक का भी नहीं छू पाती। इसलिए उस भीड़ में भी वह अकेली ही रह जाती है !

और सच उसी दिन पहली बार मेरे मन में कामना जागी थी कि मैं भी किसी का मन छू पाती !

देखा—कैसी है इस मन की माया ! जानती हूँ कि मैंने पतझर के पत्ते की तरह भरते-भरते भी किसी का मन छू लिया है और अब जागी है भटकती एक नई कामना ! लेकिन नहीं—वह मैं नहीं लिखूँगी—

सुनो ! आज सबेरे से रह-रहकर एक ही बात सोचती आरही हूँ—

कि अपनी इन प्रसुप्त कामनाओं की आँधी में कितनी बड़ी बात हमारी आँखों से ओभल रह गई !

बात यह है कि वन्दना किसी बंगाली लड़के से प्रेम करती है। वह कई बार यहाँ आया है—लड़का अच्छा है। यहीं यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। चाहती हूँ तय हो जाये तो इस चिन्ता से मुक्त हो जाऊँ—पर आज जब तुम अस्पताल से लौटे तो वन्दना के पीछे-पीछे वह लड़का तुम्हारे कमरे तक चला गया—वह उसे अपने साथ सिनेमा ले जाना चाहता था और वन्दना तुम्हें छोड़कर जाना नहीं चाहती थी। इसी बात पर आपस में कुछ कहा-सुनी हो गई है—

देखो, मैं वन्दना को बचपन से जानती हूँ। जब वह किसी बात पर अड़ जाती है तो उसकी बड़ी से बड़ी हानि हो जाए पर झुकना नहीं जानती ! उस रात इस कमरे के बाहर ही वे आपस में झगड़ते रहे थे—उस लड़के ने तुमको लेकर कुछ कड़ी बात कह दी थी, इस पर वन्दना ने भी उससे फिर कभी इधर न आने के लिए बोल दिया है !

वह जब चला गया तो बड़ी देर तक अपने कमरे में अकेली पड़ी रोती रही। जब लौटी तो उसका चेहरा पीला पड़ गया था। मेरे बाद तुम कैसे भी उसे समझा-बुझा लेना। कहीं ठीक-ठिकाना हो जाए तो मैं मुक्त हो जाऊँ। मुन्ना वन्दना से इतना हिल-मिल गया है कि मेरे पास भी अब कम आता-जाता है। सोचती हूँ शादी के बाद मुन्ना भी उसी के साथ रहे। उस लड़के के साथ मुन्ना की पटरी खूब बँठ गई है। कभी-कभी मुन्ना को वह अपने घर ले जाता है। जब घर में वन्दना नहीं होती तो घंटों न जाने क्या-कैसी उनकी आपस में बातें होती रहती हैं।

सोचती हूँ—कहीं सब बना बनाया चौपट न हो जाये। तब क्या होगा ? पर लगता है तुम सब सँभाल लोगे—

बस, अब रुकती हूँ—पिताजी आ गये हैं—

वह डाक्टर भी—और मैं जा रही हूँ—

बस, अब कुछ नहीं लिखूँगी.....लेकिन नहीं—जब सब कुछ लिख गई तो उस अपनी नई कामना की बात ही अधूरी क्यों छोड़ जाऊँ ?

सुनो !

विश्वास करोगे कि—

इस राख के ढेर में भी अभी तक कहीं कामना की चिनगारी सिसक रही है !

कि—

आज मेरे स्तब्ध प्राणों में एक नई आग सुलग उठी है कि—

कि.....कि.....इस जर्जर शरीर में स्पन्दित मेरे प्राण कैसे भी तुम्हें छू पाते.....स शरीर !

वह शरीर !

जिसकी यह छाया शेष है ! वही छाया तुम्हें एक बार छू पाती !!

एक क्षण से—दूसरे क्षण तक जिन्दा रहने के लिए व्याकुल मेरे यह प्राण, बुझने से पहले चाहते हैं तुम्हारा एक पुलक स्पर्श ! कि जिसकी अनुभूति उस पार भी मेरे साथ रहे—और फिर बस.....
.....विदा !

तुम्हारी अपनी

मीरा

पत्र पढ़कर कुछ देर सिर भुकाये वह बैठा रहा । सिर उठाकर जब उनकी ओर देखा तो लगा वे बड़ी देर से उसी की ओर देखे जा रही हैं ।

सुधीर ने देखा—

मीरा के उस श्वेत माथे पर न जाने कैसी काली छाया की लहरें आ-आकर पड़ती हैं और मिट जाती हैं ।

तभी उसने अनुभव किया माथे पर झलकती नीली नाड़ियों का धीमा-धीमा स्पन्दन !

फिर देखीं—उन बड़ी-बड़ी निर्मल आँखों में स्थिर निष्कम्प बुझती पुतलियाँ !!

सहसा मीरा ने आँखें बन्द कर लीं । उनकी वे बन्द पलकें बार-बार सिकुड़कर काँप जाती हैं ।

आँखें बन्द किये ही धीमे-गीले स्वर में बोलीं—

“यहाँ आओ.....और.....पास”

सुधीर और आगे बढ़ गया । उन्होंने आँखें खोलीं ।

सुधीर ने देखा—उन बुझती पुतलियों में फिर चमक आ गई है । वे हौसे से मुस्काई और आँखें बन्द कर लीं ।

आह ! कितना स्नेह !! कितनी करुणा—आकुलता थी उस मुस्कान में !

सुधीर ने काँपते हृदय से धीरे-धीरे अपना हाथ आगे बढ़ाया । पास ही रखे गुलदस्ते में सजे नरगिस के फूलों में से एक फूल लेकर रुकते-रुकिरुकि मीरा की काँपती अँगुलियों में थमा दिया और फिर अपना हाथ वहाँ से नहीं खींचा ।

मीरा की वे अँगुलियाँ धीरे धीरे कड़ी पड़ती गईं—

सुधीर का हाथ छूते ही मीरा का सारा बदन एक बारगी काँप गया । उनकी वे कड़ी अँगुलियाँ एकबार काँप कर शिथिल हो गई । कुछ देर दोनों स्तब्ध-प्राण ज्यों के त्यों बैठे रहे । तभी सुधीर ने देखा—

मीरा की उन बन्द आँखों से बड़े-बड़े डब-डबाते स्वेत आँसू बाहर निकल आये हैं, फिर ढरक-ढरक कर टप्-टप् भर उठे हैं ।

कुछ देर वे इसी तरह शान्त पड़ी रहीं । धीरे-धीरे उनके होठ काँप उठे, जैसे वे कुछ कहना चाहती हैं पर कह नहीं पाती ।

सुधीर का मन हुआ कि वह फूटकर रो पड़े पर कैसे भी दाँतों से होठ भींचकर उस आवेग को दबा गया ।

सहसा मीरा का सारा शरीर एक बार फिर थर-थरा गया ।

सुधीर ने देखा उनके कांपते होठ स्थिर हो गए हैं और गर्दन एक ओर को झुक आई है ।

देखकर उसे लगा जैसे कहीं बिजली का तार उसके अन्तर को छू गया है उसका सारा शरीर झनझनाकर सुन्न पड़ गया किन्तु इतना उसे अब भी चेत था कि—

मंदिर की वह पावन-ज्योति अब बुझ गई है कि—

अब आलोक नहीं, अंधकार है !

कि उसके अन्दर ही अन्दर है—

एक अवश आक्रोश ! एक दुर्निवार चीत्कार !!

× × × ×

उसने मीरा की कड़ी निर्जीव अँगुलियों में से अपना हाथ धीमे से खींच लिया ।

सुधीर का रोम-रोम प्रार्थना से भर उठा । उसका माथा श्वेत परिधान में लिपटे मीरा के पैरों पर झुक आया ।

तभी कलकत्ते के उन डाक्टर साहब ने कमरे में प्रवेश किया ।

कुछ देर वे चकित, विमूढ़ से खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उनका भारी जबड़ा अपने आप ऐसे चलने लगा जैसे कुछ चबा रहे हों ।

सुधीर जब वहाँ से उठा तो देख सामने जो खड़े हैं वे उसी के भाई हैं—डाक्टर सुबोधचन्द्र !

दोनों आँखें फाड़े कुछ क्षण एक दूसरे को घूरते रहे और इसी बीच दोनों की पुतलियों में कितने प्रश्न—कितने उत्तर—धृणा—आक्रोश—जिघान्सा के कैसे-कैसे बवन्डर उठे । हिसा-प्रतिशोध के कैसे-कितने ज्वालामुखी धधके सो उसका कुछ हिसाब नहीं—

तब अन्त में सुधीर के होठ खुले—

“तो भइया ! यह है तुम्हारा तीसरा शिकार !”

उस बात को आज लगभग चार मास बीत गये हैं !

न जाने कैसे सुधीर ने आकाश में उगते आकाश-दीप, शुक्रतारे से उस दिवंगत आत्मा का सम्बन्ध जोड़ लिया है ।

आकाश में शुक्रतारे के उगते ही न जाने कैसे उसकी नींद उचट जाती है, फिर जबतक वह तारा बुझ नहीं जाता, वह बैठा-बैठा खिड़की की चौखट पर ठाड़ी टिकाये उसी ओर टक-टकी लगाये रहता है ।

उसे लगता है जैसे वह अनन्त आकाश एक दीवाल है जिसमें चित्रित है वह—

दीप-ज्योति भीरा !

शुक्रतारा !!

आज बैठा-बैठा वह उसी शुक्रतारे को देख रहा था । वह देखता-देखता बड़-बड़ाया—

भीरा ! मैं तुम्हें बचा नहीं पाया । तुम्हारी मृत्यु नहीं हुई—हत्या हुई है ।

आह ! हत्यारों ने तुम्हारे प्राणों का मोल लगाया था कुल पचहत्तर रुपये ! वे दवा की गोलियाँ, जो तुम्हें दी गई थीं, सो नकली थीं ।

और देखो, काले बाजार के जिस हत्यारे ने तुम्हारी हत्या की है वह आज भी निरापद है ।

सोचने लगा—

निरापद है इसलिए कि हमारा कानून अंधा है ।

इसलिए कि—

आज न्याय में होगा है ।

उसके पास कोर्ट फीस, वकील की फीस नहीं थी इसलिए न्याय भी नहीं था ।

आज न्याय की नीलामी में इसीलिए वह कोई बोली न लगा सका ।

क्योंकि—पैसा ही कानून है !

पैसा ही न्याय है !!

पूँजीवादी सरकार के कानून बनाये जाते हैं उनकी रक्षा के लिए कि जिनके पास पैसा है, पूँजी है ।

यह जेल—पुलिस चौकी—डचोढ़ी पर खड़ा सिपाही, सब पूँजी के रक्षक हैं कि—

जिनके पास बहुत पूँजी है उसे कोई भूखा छीन न ले जाये ।

पूछता हूँ—हम भूखों की रक्षा के लिए कौन-सा कानून है राज्य के पास ?

सरकार उन्हें फाँसी दे सकती हैं पर अपने आप नहीं मर सकते !

कि—

आत्म-हत्या गैर कानूनी है !

बेकारी, और लम्बी बीमारी में सिसक-सिसक कर मर जाना कानूनी है !

तभी उसके कंधों को किसी ने छू लिया । वह काँप गया ।

मुड़कर देखा—वन्दना की चादर लपेटे मुन्ना उसके पास आ बठा है ।

सुधीर बोखला गया ।

आजकल वह जरा-जरा-सी बात पर खीज उठता है । जोर से चीखता बोला—

“कितनी बार तुझे समझाया कि मेरे पास मत बैठ कर ! पर मानता ही नहीं ।”

यही है हम बड़ों का स्वभाव, कभी हम बच्चों को साफ-साफ नह समझाते कि क्यों उस बात को नहीं करना है, पर सदा झुंझलाकर चीख पड़ते हैं—“यह मत कर, वह मत कर—समझता क्यों नहीं ?”

पूछता हूँ कि—

ओ सुधीर ! तूने उस अबोध बालक को कब बिठाकर ठीक तरह से समझाया है—

कि तेरा वह रोग जड़ से नहीं गया !

कि तुझे टी० बी० है—तपेदिक है !

कि तपेदिक में छूत के कीटाणु होते हैं, जो दूसरों को लगते हैं—तब उसे भी यही बीमारी हो जाती है और फिर होता है प्राणान्त !

अब मुन्ना में भी सहने की शक्ति आ गई है । जिसको देखे बिना उसे चैन नहीं आता था सो उन्हीं को बिना देखे उसने चुपचाप चार महीने बिता दिये हैं । इसीलिए अब ऐसे मौके पर उसे क्लेश नहीं होता, अब अपने बाबूजी की डाँट-फटकार भी वह चुपचाप सह लेता है ।

वह उठकर कमरे के बीच में जा खड़ा हुआ । जिस बात को कहने के लिए अपनी जीजी के पास से सुबह-सुबह ही उठकर आया है सो बिना कहे वह नहीं जा सकता ।

एकाएक बोला—

“जीजी रो रही हैं ।”

सुनकर सुधीर अन्दर ही अन्दर पिघल आया ।

स्निग्ध स्वर में बोला—

“क्यों ?”

“पता नहीं !”

कहता-कहता वह चला गया ।

सुनकर सुधीर को खाँसी का दौड़ा आया । अब उसकी छाती में सुइयाँ नहीं चुभती पर खाँसते ही गाढ़ा खून बाहर आ जाता है । तीन

चार रोज पहिले वह एक्सरे करा आया है पर खर्च के लिए क्या करे ?

अब कुछ लिखता भी तो नहीं—

उसने निश्चय किया कि वह फिर लिखने में डूब जायेगा । जिनका नया भार लिया है, जिसका भार पहिले से ही है—सो सब उसे उठाना ही होगा—

× × ×
सुधीर जब वन्दना के कमरे में आया तो देखा वह तकिये से मुँह छिपाये फूल-फूल कर रो रही है ।

उसने चाहा कि चुपचाप लौट जाये । तभी न जाने किधर से वह मुन्ना कमरे में आकर बोला—

“जीजी ! बाबूजी आये हैं ।”

कहता-कहता बाहर भाग गया ।

सुनकर हड़बड़ाती-सी वन्दना उठ बैठी । बिछौने से उतरकर सुधीर की ओर पीठ किये फर्श पर ही खड़ी हो गई । आँसू पोंछती रुंधे कंठ से बोली—

“बैठ जाइये !”

सुधीर कुर्सी खींचकर चुपचाप बैठ गया । कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा । तभी सुधीर बोला—

“वन्दना ! इस तरह रोने से क्या होगा ?”

“ ——— ।”

“कुछ कर नहीं सकती तो…………।”

“इसमें करने की क्या बात है ? जो…………जो…………जो चला गया सो अब रोने से तो नहीं लौटेगा ।” कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं ।

“मैं उनके लिए नहीं रो रही हूँ । मैं रो रही हूँ उनके क्लेश को ! आप क्यों मेरी दीदी को क्लेश दिये जा रहे हैं ?……यह मत

समझिये कि वे मर गई हैं—चली गई हैं.....वे सब देख रही हैं...
.....वे सदा यही रहती है—हमारे पास..... कल मैंने आपका
नया एक्सरे देख लिया।”

कहते-कहते रुलाई की आवाज को दबाती वह बाहर चली गई।

सुधीर थोड़ी देर जहाँ का तहाँ चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर बाद
कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया।

तभी दरवाजे का पर्दा एक ओर हटाती वन्दना ने कमरे में प्रवेश
किया। सुधीर ने जो उसकी ओर देखा तो मारे अचरज के देखता का
देखता ही रह गया। अब उसके चेहरे पर कही विषाद दुःख-क्लेश का
चिह्न तक शेष नहीं था।

सुधीर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया। वन्दना अपने बिछौने पर
बैठती शान्त स्वर में बोली—

“आपको अचरज क्यों हो रहा है ? हम लोग मर कर सदा इसी
तरह फिर जी जाती हैं।”

सुनकर सुधीर चुप रहा। आज उसने पहिली बार पहिचाना कि
यही है मीरा और वन्दना में अन्तर ! इसीलिए एक टूट गई और दूसरी
जी रही है।

सहसा उसे याद आया—एक दिन अपनी कमजोरी को लेकर मीरा
ने कहा था—

“देखो, तुम पुरुष लोग जिन राहों पर से निकलकर, कुछ संबल
लेकर आगे निकल जाते हो, राहे-दर्द को out grow कर जाते हो,
हम लोग बहुत देर में उस पर आती हैं, और जब आती हैं तो वहीं टूट
जाती हैं। इसीलिए हममें इतनी शक्ति नहीं कि दर्द को out grow
करके अपने में शक्ति जगा लें।”

आज उसने पहचाना वन्दना की उस शक्ति को जो अपने दर्द को किसने
सहज भाव से Out grow करके सामने बैठी है।

वन्दना बोली—

“बताइये ! आप इलाज क्यों नहीं कराते ?”

“बात यह है कि... .. कि..... ।”

“जानती हूँ.....आप रुपयों की चिंता न करें...मेरे पास बहुत रुपये हैं ।”

सुनकर अचरज से वह वन्दना को कुछ देर देखता रहा, फिर धीरे-धीरे उसके खिंचे गम्भीर चेहरे पर एक सरल, सहज मीठी मुस्कान बिखर गई । बोला—

“अच्छा तो सब ठीक होगया । मैं तो वन्दना-सचमुच हार गया था । मुझे तो उसका कहीं पता ही न चला ।”

“क्या मतलब ?”

“यही कि वह रूठा भगोड़ा अब लौट आया है और... ।”

“भइया !” कहते—कहते वन्दना का वह पीला चेहरा मारे दुःख और क्षोभ के सफेद पड़ गया—सुधीर को लगा जैसे उसने अनजाने में ही वन्दना के किसी ऐसे मर्मस्थल को छू लिया है कि मारे पीड़ा के वह सहसा छटपटा उठी है—

कुछ देर कमरे में किसी भी तरह न कटने वाला सन्नाटा रहा इसी बीच वन्दना एकबार मरकर फिर जी उठी । शान्त स्वर में बोली---

“भइया ! तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ । अब कभी उस बात को मत छेड़ना ।”

सुनकर सुधीर अन्दर ही अन्दर भर आया । बोला—

“लेकिन वन्दना ! तुम नहीं जानती तुम्हारी इसी एक बात से तुम्हारी दीदी को कितना क्लेश..... ।” कहते कहते उसका गला रुंध आया ।

“नहीं, अब वह नहीं हो पाएगा अब मैं जो करने जा रही हूँ उससे कभी दीदी दुखी नहीं... ।” बीच ही में बोला ‘वन्दना ! तुम नहीं जान..... ।’

तभी वह अपने अग्रह अग्रिमान की चोट दबाती शान्त स्वर में बोली—“भइया ! उन्होंने अपनी शादी... ।”

सुनकर सुधीर स्तब्ध रह गया ।

वर्षा की रात है। थोड़ी देर पहले ही बरस कर थम गया है। चाँद निकल आया है। उसकी उजियारी में उसने देखा कि कुछ सैलानी बरसाती जमुना की लहराती धारा में नावों पर इधर-उधर घूम रहे हैं।

आज जब वन्दना से उसे पता लगा कि वह जिस बंगाली प्रोफेसर से प्रेम करती थी और उसी को लेकर जिससे झगड़ा हो गया था सो, उसने शादी कर ली है, तो मारे सन्ताप के वह पागल हो उठा।

तब से रह-रहकर उसे मीरा की एक-एक बात याद हो आती है। उसने पत्र में लिखा था—

“मेरे बाद तुम कैसे भी उसे समझा बुझा लेना” “कहीं सब बना-बनाया चौपट हो गया तो क्या होगा” “पर लगता है तुम सब सँभाल लोगे” लेकिन क्या कर पाया वह ? कितनी बार वह यूनिवर्सिटी गया—पर सदा उससे यही कहा गया कि वह छुट्टी पर बाहर गया है—कभी मिलना ही नहीं हुआ। आज सुनता है कि उसकी शादी भी हो चुकी... “उसे लगता है जैसे कहीं उसी से भयंकर भूल हो गई है—नहीं तो इतना बड़ा अनर्थ कैसे हो पाता ?

आज उसे एक पल के लिए भी चैन नहीं है ! इसीलिए इतनी रात गये जमुना के किनारे श्मशान पर दौड़ा आया है।

जमुना के किनारे, वहीं बैठा है जहाँ एक दिन मीरा की चिता सजाई गई थी, जहाँ के कण-कण को छूकर उसे लगता है जैसे वह मीरा की आत्मा का ही पुलक-स्पर्श है—जैसे उस स्पर्श के सहारे अपने मन की बात वह मीरा तक पहुँचा देता है।

वह विक्षिप्तों की भाँति बैठा-बैठा बड़बड़ाया—“मीरा ! तुमने मुझे

प्यार दिया, पर देने से पहिले इतना तो जान लेती कि मैं उसका पात्र हूँ ? क्यों किया तुमने मुझ पर इतना विश्वास ?

कुछ भी तो नहीं संभाल पाया । आह ! आज मैंने तुम्हारा इतना बड़ा विश्वास भी खो दिया—

तुमने चाहा कि मैं लिखूँ—पर एक शब्द भी तो नहीं लिख पाया—

मीरा !

मैं जड़ हूँ—मुझसे कुछ नहीं होगा—मैं कुछ नहीं कर सकता—मुझे लगता है कि तुम्हारे बाद मैं अपनी ही समाधि में दब गया हूँ । मह-सूस करता हूँ पर कुछ भी देख नहीं पाता—कुछ भी सुन नहीं पाता—

बोलो मैं क्या करूँ ? मेरे प्राण तुमसे आ मिलने के लिए छटपट रहे हैं पर कैसे आऊँ—

वन्दना...मुन्ना...आह !...

मैं तुम्हें, आँखें गड़ाये चारों ओर खोजता हूँ, पर कहीं भी तो तुम नहीं दिखती..."

तभी उमड़ती जमुना की उस हरहराहट को चीरती रही दूर से एक चीख सुनाई पड़ी लेकिन वह जहाँ का तहाँ बैठा रहा ।

थोड़ी देर बाद उसे लगा कि एक नाव जमुना के किनारे ठीकवहीं आ लगी है, जहाँ वह बैठा है ।

तभी सुनाई पड़े किन्हीं पुरुष-नारी के दो कण्ठ स्वर ! उसने सुना एक भरपिया पुरुष कण्ठ-स्वर—

"सुनो—मैंने जब जो चाहा, सो किया है—मैं जानता था कि एक दिन तुम्हें 'हाँ' कहनी ही पड़ेगी । मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि तुम्हारे लिए मेरे मन में कितना प्यार है—अच्छा बताओ, प्यार झूठा होता तो तुम 'हाँ' क्यों कहती ?"

दबा नारी-कण्ठ—“एक चैंक कल मैंने भुना लिया है । दूसरा कब दूँगे ?”

“दूसरा तब, जब तुम मेरी बात मान लोगी । जब चीखना-पुकारना बन्द कर दोगी !”

“नही ! शादी से पहिले में यह नहीं होने दूँगी ।”

“तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करती ? तुम समझती क्यों नहीं ? मैं अब तुम्हें कैसे बताऊँ कि अब तुम्हारे बिना जी नहीं सकता । फिर मुझसे तुम भागती क्यों हो ?” उसने जाना कि श्मशान के किनारे—जमुना की लहरों पर दो नर-पशु निकट ही ‘प्यार’ का मोल भाव कर रहे हैं ।

उसने अपना ध्यान उस ओर से खींचना चाहा । तभी वह अस्त-नारी कण्ठ सुन पड़ा—

“नही ! नही !! तुम आगे बढ़े तो मैं यहीं झूबकर मर जाऊँगी ।” सुनकर वह उठकर खड़ा हो गया । उसने देखा—

पुरुष-छाया ने झपटकर उस नारी-छाया को पकड़ लिया है ।

वह आगे बढ़ आया और रात के सन्नाटे में वह नारी-कण्ठ स्पष्ट से स्पष्टतर हो उठा ।

जमुना की कगार के ठीक नीचे वह नाव उस झण्डे में जोर-जोर से हिलडुल रही थी ।

धीरे-धीरे उसे लगा जैसे वह नारी-कण्ठ उसका परिचित है—एक आशंका से उसका रोम-रोम काँप उठा !

स्तब्ध-प्राण सुधीर ने पहिचाना कि वह वन्दना है और साथ है उसी का भाई डा० सुबोध । साथ ही बिजली की तरह उसके अन्तर में कौंध गया कि—

वन्दना उसकी बीमारी का खर्च जुटाने के लिए ही अपना विक्रय कर रही है !

एक आक्रोश भरा चीत्कार—

“वन्दना !”

साथ ही न जाने कैसी प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का ज्वालामुखी उसके अन्दर भभक उठा ।

वह सीधा जमुना की ऊँची कगार से नाव पर कूद पड़ा ।

उसे पता ही न चला कि कब-कैसे उसके हाथों में अपने भइया की गर्दन आ गई—और कब—उसकी अंगुलियाँ स्वात की भाँति इतनी कड़ी होती गईं कि—

डाक्टर सुबोध का वह अभिमान—दर्प भरा शरीर थोड़ी देर छूट-पटा कर शान्त हो गया !

×

×

×

×

जब वन्दना को लेकर घर लौटा तो जोर से पानी बरस उठा था । देखा—मुन्ना उसी के कमरे में खिड़की की ओर मुँह किये चुपचाप बैठा है । वह खिड़की के काँच से बाहर बरसते पानी और रह-रहकर चमकती बिजली को देख रहा था ।

वन्दना अपने कमरे की ओर चली गई । कमरे में पैर रखते ही मुन्ना बोला—

“बाबूजी ! तुम कहाँ गये थे ? जानते हो आज अपनी दीदी आयेंगी ! बाबूजी ! दीदी आयेंगी ।”

सुधीर ने टूटे स्वर में कहा—

“जाओ । जीजी आ गई । जाकर सो जाओ ।”

सुनकर मुन्ना जाने लगा पर जाते-जाते न जाने क्या सोचकर ठिठक गया । डरते-डरते बोला—“बाबूजी ! तुम यह बताओ कि दीदी आ सकती हैं या नहीं ?”

“चुप रहो !”

कुछ देर वह चुप रहा फिर धीरे से बोला—

“बाबूजी ! सरकस में आदमी रस्सी से नीचे उतरता है न !, बस वैसे ही दीदी रामजी से छिपकर नीचे आ जायेगी । बाबूजी ! उधर आसमान से कौंसी सफेद डोरियाँ नीचे लटक रही हैं । दीदी आसमान में ही तो गई है—

सुधीर ने बन्द खिड़की के काँच में से देखा—

कि—

बरसते पानी की मोटी-मोटी धारें बार-बार बिजली के प्रकाश में आसमान से लटकती सफेद रस्सियों की भाँति ही चमक उठती हैं ।

सहसा मुन्ना बोला—“बस, इन्हीं डोरियों को पकड़कर रामजी से छिपकर, दीदी नीचे उतर आयेगी ।” वह खीजकर बोला—“गधे हो तुम !” तभी गुम-सुम वन्दना कमरे में आई ।

धीरे से बोली—

“कपड़े बदल लीजिये ”

कहते-कहते उसने पोती कुर्ता उसके बिछीने पर रख दिये । फिर बिना कुछ कहे मुन्ना को लेकर बाहर चली गई ।

थोड़ी देर बाद मुन्ना एक बड़ा लिफाफा लेकर लौटा । बिछीने पर लिफाफा रख दिया और धीरे से बोला—“जीजी ने दिया है !”

सुधीर ने कोई जवाब नहीं दिया । कुछ देर वह अपने बाबूजी को देखता रहा फिर चुपचाप उदास मन कमरे से बाहर चला गया ।

सुधीर ने लिफाफा खोला । लिफाफा सौ-सौ रुपयों के बहुत से नोटों से भरा था । उसी के साथ एक चिट्ठी थी । सुधीर ने पढ़ा—

“सुबह होने से पहले ही शहर छोड़ कर चले जाइये । मैं कल दस की गाड़ी से मुन्ना को लेकर अलाहाबाद जा रही हूँ । रुपये मेरे पास हैं ।”

उम लिफाफे को एक ओर फेंक कर उसने खिड़की खोल दी । उसने गीले कपड़े नहीं बदले । चुपचाप खिड़की की चौखट पर ठोड़ी

टेककर सीधा उन तीखी बौछारों को सहता हुआ बैठ गया !

कैसी है हमारे इस मन की यह माया !

हम अपना बड़े से बड़ा दर्द भी इन्हीं इच्छित-विश्वासों को लेकर हल्का कर लेते हैं। अभी जिस बात को लेकर वह मुन्ना पर खीज उठा था, सो वही 'मिथ्या' अब उसे 'सत्य' सा प्रतीत हो उठा है।

वह खिड़की की चौखट पर ठोड़ी टिकाये बिजली की हर कौंध में आँखें फाड़-फाड़ कर देख उठता है कि कहाँ-कैसे पानी की उन असंख्य डोरों में किस डोर के सहारे मीरा आसमान से नीचे उतर रही है ! उसे रह-रह कर खाँसी आती है पर कैसे ही दबा जाता है।

—और कैसा है यह आज का तूफान ! कि थमने का नाम नहीं लेता। रह-रहकर बादल गड़-गड़ा उठते हैं। बिजली कौंधती है—और फिर उस चकाचौंध में समस्त आकाश पानी की असंख्य डोरियों से भर उठता है—

कि जिनके सहारे आज मीरा इस धरती पर लौट रही है। सहसा उसे खाँसी का दुर्निवार दौरा आया। ढेर सारा गाढ़ा खून खिड़की की चौखट पर बिखर गया !

दूसरे दिन सुबह होते-होते रात का वह प्रलयकारी तूफान, बिजली की कौंध, और बादलों की गड़गड़ाहट सब कुछ शान्त हो चुका था।

मुन्ना कमरे में दौड़ा-दौड़ा आया। उसने देखा उसके बाबूजी सदा की भाँति खिड़की की चौखट पर ठोड़ी टिकाये बैठे हैं। उसने देखा कि उनके सारे कपड़े भीगकर शरीर से चिपट गए हैं। आकर बोला—

“बाबूजी ! तुम्हारे कपड़े भीग गए। जल्दी चलो। जीजी बुला रही है। बाबूजी ! मैं इलाहबाद जा रहा हूँ।”

जब उसके बाबूजी ने कोई जवाब नहीं दिया तो वह उनके निकट बढ़ आया।

धीरे से बोला—“बाबूजी ! तुम बोलते क्यों नहीं ?”

तभी उसके कानों ने सुना, जैसे लोहे की जंजीरें कहीं भनभना उठी हैं।

उसने मुड़ कर देखा—

पुलिस इन्स्पेक्टर के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ खनखनाते कई पुलिस के सिपाही कमरे में आ खड़े हुये हैं।

इस तरह उन्हें अन्दर आते देख कर वह डर गया। दौड़ कर अपने बाबूजी से जा चिपटा। जब जोर से भकभोर कर उन्हें जगाना चाहा, तभी उस ने देखा—कि बाबूजी की आँखें खुली हैं पर उनके पलक नहीं भपकते। खिड़की की सारी चौखट काले गाढ़े खून से भर गई है !

वह सब देखकर मारे भय और क्लेश के मुन्ना थर-थर कांपने लगा। सहसा अपने बाबूजी से चिपट कर जोर से चीख पड़ा—

“बा S बू S S जी S S S !”

